ओ३म्

ईश्वर विचार

द्वितीय भाग

प्रिय पाठक वृन्द ! ईश्वर विचार के प्रथम भाग में ईश्वर का अस्तित्व तर्क से सिद्ध किया गया है उस पुस्तक में वेद और शास्त्रों के प्रमाण इस हेतु से नहीं दिये कि उस का सम्बन्ध नास्तिकों से है और नास्तिक किसी पुस्तक को प्रामाणिक नहीं मानते ॥

अब हम ईश्वर विचार का दूसरा भाग आप के समक्ष भेंट करते है जिस में इस विषय पर कि ईश्वर साकार है या निराकार विचार किया गया है ॥

ईश्वर का लक्षण सच्चिदानन्द हैं और इस शब्द में तीन पद अर्थात् (१) सत् (२) चित् (३) आनन्द हैं तीन काल में रहने वाले को सत कहते हैं और ज्ञान वाले को चित और तीनों काल में दुःख के अत्यन्ता भाव को आनन्द कहते हैं अब यह साकार होगा या निराकार तात्पर्य यह है कि सतमु-

र्तिमान है या अमूर्ति मान है यदि कहा जाय कि मूर्तिमान है तो कहा जायगा आया वह मूर्ति संयोग से बनी है या तत्वस्वरूप है अर्थात् सावयव है या निरावयव यदि कहाजाय सावयव अर्थात् अनेक वस्तुओं से मिलकर बनी है तो यह प्रश्न होगा कि भौतिक है या अभौतिक । यदि इस का यह उत्तर हो कि भौतिक है तो अवश्यमेव वहसत भूतोका कार्य होगा जब कार्य हुआ तो किसी काल में कारण से उत्पन्न हुवा होगा और अपनी उत्पत्ती से पूर्व कालमें नहीं होगा इससे प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जो उत्पन्नहुवा वह नाश भी अवश्यहोगा और नाशान्तर नहीं रहेगा तात्पर्य यह कि भौतिक मूर्ति होने से आदि और अन्त में न रहा केवल मध्य अवस्था में हुआ परन्तु सत तीनो कालमें रहने वालेको कहते हैं अतएव जो वस्तु एक कालमें रहे वह सत नहीं हो सकती—यदि कहाजाय अभौतिक मूर्ति है तो हो नहीं सकती—क्योंकि अभौतिक मूर्ति में दृष्टान्तका अभाव है और प्रत्यक्ष का विरोधी होने से इसमें अनुमान भी नहीं हो सकता क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्वक होता है और शब्द प्रमाण भी नहीं होसकता न है—यदि कहें कि निरावयव मूर्ति है तो सत प्रमाणु धर्म्म वाला होगा और प्रमाणु एक देशी है अतएव सत भी एक देशी होगा यह भी असम्भव है क्योंकि कोई सान्त पदार्थ अनन्त नहीं हो सकता अतएव सत से सारे जगत के नियम नहीं चल सकते परन्तु परमात्मा सारे जगत का नियन्ता है इसलिये सतको अमूर्ति मानना पड़ेगा अब रहा चित यह कभी मूर्ति वाला होही नहीं सकता क्योंकि मूर्ति मान पदार्थ भौतिक हैं

और भौतिकजड पदार्थ है अर्थात् ज्ञान शून्य चित जो ज्ञान का अधिकरण है वह किस प्रकार जड़ हो सकता है।
द्वितीय भौतिक पदार्थ अनित्य है यदि चित अनित्य है तो सत के साथ तीन कालमें किस प्रकार रहसकता है अतएव चितभी मूर्ति वाला नहीं होसकता—अब रहा आनन्द यहभी तीनकाल में सत के साथ रहता है अतएव उसको भी मूर्ति वाला नहीं कह सकते

पाठक वृन्द! उपरोक्त लेख से सिद्ध होगया कि सच्चिदानन्द साकार नहीं प्रत्युत निराकार है और ईश्वर सर्व शक्ति मान है और साकार वस्तु सीमाबद्ध होगी और जो सीमाबद्ध होगा उस के गुण तथा शक्तियाँ वैसी ही होगी और जिसकी शक्ति सीमा बद्ध होगी वह सर्व शक्तिमान नहीं होसकता—इस से ज्ञात हुआ कि निराकार ही सर्व शक्तिमान हो सकता है इस का प्रयोजन यह नहीं कि प्रत्येक निराकार सर्व शक्तिमान है। किन्तु सर्व शक्तिमान अवश्य निराकार है बहुत से महाशय कहते हैं कि जिसका रूप नहीं वह वस्तु ही नहीं परन्तु स्मरण रहे कि वायु रूप रहित है क्या वह वस्तु नहीं मन, बुद्धि, सुख, दु ख, गरमी, सरदी, काल, दिशा, आकाश, यह सारी वस्तुयें आकार से रहित हैं क्या यह नहीं हैं।

प्रिय पाठक! ईश्वर अजन्मा अर्थात् जगत का कर्त्ता है परन्तु साकार पदार्थ स्वय परमाणु संयोग से बना हुआ है वह किस प्रकार जगत का आदि कारण होसकता है-ईश्वर

अमृत है परन्तु साकार पदार्थ सावयव होने से नाश वाला होता है अतएव वह अमृत नहीं होसकता ईश्वर सर्व व्यापक है और अनन्त है अनन्त दो प्रकार का होता है एक देश योग से दूसरा काल योग से—परन्तु साकार पदार्थ सावयव और जन्य होने से काल योग से तो सान्त ही हैं और सीमा वाला होने से देश योग सेभी सान्त होगा इस कारण कोई साकार पदार्थ अनन्त नहीं होसकता और ईश्वर अनन्त है इस कारण वह साकार नहीं।

ईश्वर निर्विकार है परन्तु साकार पदार्थ सावयव होने से ६ प्रकार के विकारों अर्थात् जन्म वृद्धि स्थिति परिणाम घटने और नाश होने से बच नहीं सकता अतएव ईश्वर निराकार है—ईश्वर सर्वाधार है साकार पदार्थ एक देशी होने से सर्वाधार होनहीं सकता और दूसरे उसका स्वयं आधार की आवश्यकता होगी—साकार मानने वालों ने स्वयं स्वीकार किया है किसी का मन्तव्य है कि ईश्वर सिंहासन पर विराजमान है और उसी सिंहासन का आधार देवता है किसी का मन्तव्य है कि क्षीर सागर में परमात्मा शेष की शय्यापर शयन करते हैं किसी ने उसका स्थान वैकुण्ठ माना है परिणाम यह है कि साकार माननेवाले स्वयं उसको आधार की आवश्यता मान रहे हैं।

साकार है तो उसी समय उसको एक देही समझ कर उसके प्रबन्ध के वास्ते सहायक ढूंढने आरम्भ किये किसी ने कहा फरिश्तों के द्वारा उसके कार्य्य होते हैं और दुनियां में पैग़म्बर का होना तसलीम कर बैठे इतना विचार न हुआ कि पैग़म्बर के अर्थ पैग़ाम लाने वाले के हैं और पैग़ाम कुछ दूरी से आया करता है क्या कोई बतला सकता है कि परमेश्वर और मनुष्य के बीच में कितना अन्तर है जिसके कारण पैग़म्बरों की आवश्यकता हुई—नहीं २ किन्तु पैग़म्बरों पर वही फ़रिश्तों द्वारा प्रकट होना स्वीकार करना पड़ा अर्थात् परमेश्वर को बिलकुल असमर्थ सा बना दिया दूसरी तरफ़ किसी ने साकार मानकर उसका बेटा बना लिया और उसको खुदा के दक्षिण हाथ की ओर जा बिठलाया और यह न सोचा कि दायां बायां सीमाबद्ध पदार्थ का होता है सीमाबद्ध पदार्थ नाशवान होता है अतएव परमेश्वर भी नाशवान होजायगा और प्रायः लोगों ने उसका सिंहासन उसके गण उसके स्त्री आदि बातें कल्पना करली उन्हों ने वास्तव में गृहस्थी मनुष्य बना दिया है और इस प्रकार की चिन्ताओं में ग्रसित कर दिया है कि वास्तविक उसको ईश्वर की पदवी से गिरा दिया जब यह दशा हुई तो सारे संसार में पाप विस्तीर्ण होगया मनुष्य लोग ईश्वर से अधिकांश राजा और कुटुम्बियों का भय खाने लगे उन्हों ने समझ लिया कि ईश्वर किसी स्थान पर होगा।

महाशयो! इस समय जो पाप संसार में विस्तीर्ण हुआ दृष्टिगत हो रहा है यह सब ईश्वर के साकार मानने से फैल गया है यदि ईश्वर को निराकार माना जाता तो संसार में पाप फैलही नहीं सकता था क्यों कि यह तो हम दृष्टिगत करते हैं कि जीव फलप्रदाता शक्ति से नित्यभयातुर होता है जैसे यदि कहीं पुलिस विद्यमान हो वहां कोई चोर चोरी नहीं करता जब पुलिस को स्वप्न में अथवा दूर दृष्टिगत करता है तब पाप करता है कोई मनुष्य अपने माता पिता के सन्मुख व्यभिचार नहीं करता इस से ज्ञात होता है कि यदि मनुष्य को इस बात का निश्चित हो कि परमात्मा प्रत्येक स्थान में विद्यमान है और संसार का अन्धेरे से अन्धेरा कोण अथवा पर्वत की अन्धेरे से अन्धेरी गुफा परमात्मा से शून्य नहीं है तो इस दशा में वह किसी प्रकार और किसी स्थान में भी छिप कर पाप कर्म नहीं करसकता परन्तु साकार मानने से तो ईश्वर एक देशी होगा और उसको सब स्थान में विद्यमान किसी प्रकार नहीं मान सकते और ससीमवस्तु से बचकर निकलने के लिये मनुष्य की आत्मा कोई न कोई मार्ग निकाल लेती है जैसे ससीम राजा की ससीम शक्ति से बचने के लिये देश से भाग कर अन्य देश में चला जाना प्रथम उपाय है द्वितीय पुलिसको घूस देकर बच जानेका प्रयत्न करना द्वितीय उपाय है असत्य वादी साक्षियों से मिथ्यासाक्षी दिलाकर और अन्य मनुष्यों के असत्य वचनसे लाभ उठानेका यत्नकरना तीसरी युक्ति

है और वकीलोंके द्वारा न्यायकारियोंको भ्रम में डालने का यत्न करना चतुर्थ मार्ग है इसी प्रकार अन्य भी अधिकमार्गजो सर्वसाम शक्ति के दंडके निवृत्यर्थ वर्तेजाते है यह सब साकार दशा में हो सकते हैं निराकार और चैतन्य शक्ति को सर्व अन्तर्यमी होने के दशा में इस प्रकार का कोई यत्न लाभदायक नहीं हो सकता उस दशा में मनुष्य पाप करके सुख प्राप्तिकी आशा नहीं रखसकता और दुःख की आशा रखकर कोई कार्य किया ही नहीं जाता इससे स्पष्ट विदित होता है कि निराकार के मानने मे मुक्ति है साकार से नहीं क्योंकि मुक्ति ईश्वर ज्ञान के अतिरिक्त होही नहीं हो सकती और ईश्वरके साकार मानने से भी मुक्ति ही नहीं सकती अतएव साकार ईश्वर में मुक्तिदाता होना जो ईश्वरका गुण हैरह नहीं सकता अतएव ईश्वर निराकार है

महाशयगण! युक्तियों से तो आप समझ गये होंगे कि ईश्वर साकार नहीं क्योंकि साकार पदार्थ अनित्य और जन्य होते हैं और शक्तिमान और सच्चिदानन्द भी नहीं होसक्ते। अब शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध किया जाता है कि ईश्वर निराकार है ॥

ततः परंब्रह्मपरंवृहन्तंयथानिकायंसर्व भूतेपुगूढम् । विश्वस्यैकं परिवेष्टितारंइशन्तं ज्ञात्वाऽमृताभवन्ति ॥ ७ ॥ ततोयदुत्तरतरं

तद्रूपमनामयम् । यएतद्विदुरमृतास्तेभ-
वन्त्यथेतरेदुःखमेवापि यान्तिः ॥ १० ॥

अपाणिपादोजवनोगृहीतापश्यत्यचक्षुः स
शृणोत्यकर्ण ! सवेत्तिवेद्यंनचतस्यास्तिवे-
त्तातमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १८ ॥

उससे परे वडा ब्रह्म है जो अशरीर होकर सब जोवों में छिपा हुआ है सारे संसार को आच्छादन करनेवाला जो एक परमात्मा ईश्वर है इसके ज्ञानसे ही मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

अतएव वह सबसेवड़ा है और वह सबसेरहित और अनादि है अर्थात् निराकार है और जो लोग उसको जानते हैं वह लोग अमृत्यु होते हैं और जो इसके ज्ञान से शून्य है वह सब संसार में दुःख ही भोगा करते हैं ॥ १० ॥

उस ईश्वर के हस्तपाद नहीं परन्तु वह गमन करता और पदार्थों को धारण करता है और वह चक्षु रहित है परन्तु वह देखता है और श्रोत्र रहित होकर सुनता है,वह सर्व संसार का ज्ञाता है और इसका यथावत जानने वाला कोई नहीं उसी को उग्र पुरुष व्यापक कहते हैं ।

एकोवशीसर्व भूतान्तरात्माएकंरूपं बहुधायः करोतितमात्मस्थं येअनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं शास्वति नेतरेषाम् ॥

यह परमात्मा एक है और सारे जगत् में व्यापक और सर्व प्राणियों का अन्तर्यामी जिस ने प्रकृति से इस नाना प्रकार के जगत का नाना प्रकार के रूपों में किया और जो आत्मा में रहने वाला है जिस को धीर पुरुष प्रकृति के अन्दर व्यापक देखते हैं वही मुक्ति अर्थात् निरविच्छन्न सुख को प्राप्त करते हैं अन्य नहीं

नित्योनित्यानांचेतनश्चेतनानांएकोयबहुणांयोविदधातिकामान् तमात्मस्थं ये अनुपश्यन्तिधीरातेषांशान्तिशास्वति नेतरेषाम् ॥

यह परमात्मा नित्य पदार्थों में नित्य है अर्थात् उसमें स्वरूप से अथवा ज्ञान से परिणाम नहीं है यह चैतन्य जीवों से भी

चैतन्य है अर्थात् जीव अल्पज्ञ है और वह सर्वज्ञ है जो एक होकर अनेकों के अर्थ पूरण करता है अर्थात् संसार में कर्म्मों का फल प्रदाता है उस जीवात्मा में रमण करने वाले को जो धीर पुरुष देखते हैं उन्हीं को शान्ति निरन्तर प्राप्त होती है। अन्यों को नहीं।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धम पाप विद्धम् कविर्मनीषीपरिभूः स्वयम्भूर्य्याथातथ्यतोर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी शरीर से रहित और नाड़ी आदि के बन्धन से शून्य शुद्ध और पाप से शून्य है तीन काल का ज्ञाता अन्तर्यामी और जगत् में व्यापक उस परमात्मा ने निरन्तर सुखों की प्राप्ति के लिये यथार्थ ज्ञान प्रत्येक वस्तु का वेदों द्वारा प्रदान किया है।

ईशावास्यमिदꣳ सर्व्वंयत्किं च जगत्यांजगत्। तेनत्यक्तेनभुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

यह सारा जगत और जगत के प्रत्येक पदार्थ सब ईश्वर का निवास स्थान है और ईश्वर ने सब आच्छादन किया हुआ है जो इस परमात्मा को छोड़ते हैं वह जन्म मरण रूपी महा क्लेश को भोगते हैं ईश्वर फलप्रदाता सबकाअन्तर्यामी प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है इसलिये हेजीव तू! किसी का धन लेने की इच्छामतकर यदि तू ईश्वर को त्याग अन्य की वस्तुलेगा तो अवश्य दुःख पावेगा ।

महाशयो जब प्रमाणों से भी सिद्ध होगया कि ईश्वर निराकार और जगत् में व्यापक है इसमें भोले भाले भ्राता यह प्रश्न करते हैं कि यदि ईश्वर निराकार है तो उसका ध्यान किसी प्रकार नहीं होसकता मानों उनके विचारानुसार साकार निराकार का ध्यान नहीं करसकता और निराकार साकारका तो विचार करना चाहिये कि जीवात्मा साकार है अथवा निराकार चूंकि जीवात्मा भी निराकार है अतएव निराकार का ध्यान निराकार ही करता है और जो साकार पदार्थ है उनमें निराकार गुणको ही जीवात्मा ग्रहण करता है जैसे फूलको जब देखते हैं तो प्रथम रंगका ज्ञान होताहै जो निराकार है द्वितीय गन्धका ज्ञान होता वह भी निराकार है तीसरे परिमाण ज्ञान होता है वह भी निराकार है इसी प्रकार जीवात्मा गुणों के अतिरिक्त किसी वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं करता और गुण निराकार है और जो लोग

कृष्णादि महात्माओं की मूर्ति में भी ध्यान लगाते हैं वह भी निराकार गुणों का ही ध्यान होता है जैसे कि काला रंग आकार और गुण यह सब निराकार पदार्थ है इन्हीं का ज्ञान होता है महाशयो चूंकि मनुष्य का उद्देश्य संसार में मुक्ति प्राप्त करना है और मुक्ति दृष्टपदार्थ से हो नहीं सकती जैसा कि महात्मा कपिल जो अपने सांख्य सूत्र में बतलाते हैं ॥

न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।

अर्थात् दृष्ट पदार्थों से अत्यन्त दुखनिवृत्ती प्राप्त नहीं होती क्योंकि दृष्टपदार्थ के संयोग से जो दुख दूर होता है वह इस पदार्थ के वियोग से फिर उत्पन्न होजाता है यह नित्य प्रति का अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण है अतएव उपनिषदों में लिखा है कि देवता लोग परोक्ष अर्थात् जो पदार्थ आंखों से नहीं दृष्टि गत होते अर्थात् जिन को ज्ञान इन्द्रियों से न जानने योग्य पदार्थ समझते हैं अर्थात् विद्वान् लोग आत्मा जो इन्द्रियों से नहीं जाना जाता उस को प्यार करते हैं और प्रत्यक्ष जो प्राकृत पदार्थ है उन से घृणा करते हैं क्योंकि प्रकृति दुःख स्वरूप है अतएव इससे मिथ्या ज्ञान और मिथ्या ज्ञान से राग व द्वेश उत्पन्न होते हैं और राग से वस्तुकी प्राप्ति की यत्न उत्पन्न होती है और इस यत्न से धर्म अधर्म दो प्रकार की कर्म उत्पन्न होता है

और मनुष्य पाप और पुण्य करता है और उस पाप और पुण्य का फल दुख सुख भोगने के अर्थ जन्म मरणधारण किया जात है जो महा दुःख रुप है महाशयो इस पापकी विदित होगया कि निराकार ईश्वर और साकार प्रकृति है और साकार के सन्योग से दुःख और निराकार से सुख लाभ होता है अतएव आप ईश्वर को निराकार मानकर शान्ति की प्राप्ति करें।

॥ इति भूयात् ॥

दयानन्द ट्रेक्ट सोसाइटी के सामान्य नियम

१—इस टरेक्ट सोसाइटी का आशय ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तो का प्रचार करना और वेद मन्त्रों के शब्दों को सरल भाषा में व्याख्या करके और दर्शनों के प्रत्येक सूत्र पर एक टरेक्ट लिख कर उन के आशय का अच्छी तरह समझा कर आर्य पुरुषों को इस लायक बनाना है कि वह वैदिक धर्म के विरोधी के मुकाबले में स्वंय काम चला सकें बाहर से सहायता की आवश्यकता न रहे ॥

२—यह टरेक्ट सोसाइटी एक वर्ष में १६ पृष्ठ के) । वाले ३६० ट्रैक्ट प्रकाशित किया करेगी जिस में वेद मन्त्रों की व्याख्या एक

टरेक्ट में एक मन्त्र १२५ दर्शनों के सूत्रों की व्याख्या एक टरेक्ट में एक सूत्र १२५ आर्य सिद्धान्तो पर विचार २५ टरेक्ट (मुखालिफान) वैदिकधर्म के जवाब मे ७५ आर्यसमाज के सुधार पर १० टरेक्ट ॥

३—जो मनुष्य इस टरेक्ट सोसाइटी के ग्राहक बनकर सहायता देंगे उन को १० दिन के पीछे इकट्ठे १० टरेक्ट)॥ के टिकट में भेजदिये जावेंगे जिस जगह १० ग्राहक होंगे उन को नित्य प्रति रवाना किये जावेंगे जिस जिले में १० समाजें १० टरेक्ट रोज़ाना लेने वाले होंगे या जिस ज़िले में १०० ग्राहक रोज़ाना टरेक्टक होंगे उस जिले को एक उपदेशक टरेक्ट सोसाइटी की ओर से बिना वेतन के दिया जायगा ॥

ओ३म्

ट्रेक्ट नम्बर १४

ईश्वर प्राप्ति

प्रथम भाग

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी की आज्ञानुसार
प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रेक्ट सोसाइटी ने
महाविद्यालय मैशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रेक्टसोसाइटी
(दफ्तर) स्टेशन के सामने
बाजार हरिद्वार.

४००० प्रति]   [मूल्य २ पाई.

ओ३म्

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गौशाला, आर्टस्कूल; इत्यादि उपस्थित हैं ॥

ओ३म्

ईश्वर प्राप्ति

प्रथम भाग

वेदाहमेतम्पुरुषम्महान्तमादित्य वर्णन्त-मसः परस्तात् ॥ तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १ ॥

इस वेद मन्त्र में परमात्मा जीवों को मोक्ष के साधन का उपदेश करते हैं, और बतलाते हैं कि संसार में मोक्ष के बहुत से साधन नहीं किन्तु जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिये प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं होसक्ता और नहीं सरदी को दूर करने के लिये गरमी के अतिरिक्त और से काम चलसक्ता है। इसी प्रकार संसार में मनुष्य के जीवन उद्देश्य अर्थात् दुःखों से छुटने का नाम या आगे को दुःख न उत्पन्न होने का नाम मोक्ष बतलाते हुवे उस के एक ही साधन को (जिस के अतिरिक्त

दूसरा हो नहीं सक्ता) उपदेश करते हैं कि — तुम सर्वव्यापक परमात्मा को जानो जो परमात्मा सूर्यवत् प्रकाशमय है जिस में किसी प्रकार की अज्ञानता या दोषादि का सम्भव ही नहीं, जो सर्व प्रकार के दूषणों से पृथक है। उसी परमात्मा को जानने से ही अति मृत्यु अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष के लिये कोई दूसरा मार्ग होही नहीं सक्ता। वेद के इस मन्त्र को सुनने ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि—

" लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्न तु प्रतिज्ञामात्रेण „

अर्थात् जब तक किसी वस्तु का लक्षण न कहा जावे और उसकी सत्ता के लिये कोई प्रमाण न उपस्थित किया जावे तब तक उसकी सत्ता प्रतिज्ञामात्र से नहीं सिद्ध होसकता। इस कारण जब तक ईश्वर का लक्षण न किया जावे तब तक उस के जानने से मुक्ति होती है और परमात्मा के जानने के अतिरिक्त मोक्ष नहीं होसका प्रतिज्ञा मात्र ही है इस सिद्धान्त को लेकर महात्मा व्यासजी अपने वेदान्तदर्शन में ईश्वर का लक्षण कहते हैं कि—

" जन्माद्यस्ययतः „ । वे० द० ॥

अर्थ—जिस से इस संसार का जन्म स्थिति और नाश होता है वह ईश्वर है अर्थात् जो इस सृष्टि का उत्पन्न करने वाला

पालने वाला और नाश करनेवाला है वह ईश्वर है इस लक्षण को सुनते ही वादी शंका करता है कि तुम्हारा यह ईश्वर का लक्षण ठीक नहीं क्योंकि यह संसार अनादि है जबतक जगत् की उत्पत्ति सिद्ध न की जावे तब तक ईश्वर का यह लक्षण किस प्रकार ठीक हो सक्ता है इसकारण से कि वादी की प्रतिज्ञा जगत् को अनादि मानने की है इस पर यह प्रश्न होता है कि जगत् स्वरूप से अनादि है या प्रवाह से ? यदि यह कहो कि जगत् स्वरूप से अनादि है, यह तो किसी दशा में सत्य हो ही नहीं सक्ता इस दशा में जगत् का अविकारी अर्थात् ६ विकारों से पृथक् होना अवश्यक है। वह विकार ये हैं कि "जायते वर्द्धते संस्थीयते विपरिणम्यते क्षीयते विनश्यते,, जिस वस्तु में इन ६ विकारों में से कोई पाया जावे वह अनादि नहीं हो सक्ती क्योंकि प्रत्यक्ष में भी इन ६ विकारों का उत्पत्तिमान् वस्तु में ही होना पाया जाता है। जैसे एक बालक उत्पन्न होता है, बढता है, युवावस्था पर्य्यन्त बढकर बढना बन्द हो जाता है, फिर मूछडाढी का निकलना, शरीर में भोजन का आना फिर पक कर निकलजाना आदि विकार होते रहते है पश्चात वृद्ध होना अर्थात् घटना आरम्भ होता अन्तको मरजाता है यही दशा एक वृक्ष की है वहबीज से छोटासा अंकुर निकलकर उत्पन्न होता है फिर बढता है, फिर एक अवधि तक बढकर बढना बन्द हो जाता है फिर पतझड़ और वसन्त के कारण कभी हरा भरा होकर फल लाता है कभी शुष्क होकर नंगा हो जाता है, अन्त

को नाश हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि किसी वस्तु में छहों विकार एक साथ ही हों किन्तु अपने २ समय में एक या दो ही रहते हैं। जो उस वस्तु में अपने दूसरे सहचारियों के होने को सिद्ध करते हैं। जबकि हम सम्पूर्ण जगत को विकार वाला प्रतीत करते हैं तो उसको किस प्रकार अनादि स्वीकार कर सके हैं? अनादि वस्तु के लिये निर्विकार अर्थात् बढ़ने घटने से पृथक होना आवश्यक है। जब कि यह सृष्टि किसी प्रकार भी विकार रहित सिद्ध नहीं होती तो किसी प्रकार यह स्वरूप से अनादि नहीं कहला सकी। यदि कहो कि प्रवाह से अनादि है तो इस प्रवाह के चलाने वाले का होना (अर्थात् जो किसी समय बनाये और किसी समय न बनाने उचित है) इस पर वादी यह कहता है कि यद्यपि जगत् में भिन्न२ वस्तुयें दशा बदलती हुई दृष्टि पड़ती हैं परन्तु समष्टि सृष्टि दशा नहीं बदलती इस कारण सृष्टि को स्वरूप से अनादि मानना ठीक है। यहां पर हम वादी से पूछते हैं कि वास्तव में सृष्टि इन सब वस्तुओं के समूह का नाम है या कोई दूसरी वस्तु है? यदि कहो कि वस्तुओं के समूह का नाम सृष्टि है तो जिस समूह के अवयव दशा बदलते हैं तो वह समूह विकार रहित नहीं हो सकता जैसे एक मनुष्य के हाथ, पांव, उदर, शिर आदि सम्पूर्ण अवयव निर्बल हो गये यदि वह कहे कि मेरा शरीर निर्बल नहीं हुआ तो उसे मूर्ख ही कहना पड़ेगा क्योंकि इन अवयवों के समूह के अति-

रिक्त शरीर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इस कारण सृष्टि के सम्पूर्ण अवयवों को विकारी मानकर सृष्टि को समष्टिरूप से निर्विकार बतलाना सर्वथा अज्ञानता है। यदि वादी कहे कि इन वस्तुओं के समूह के अतिरिक्त सृष्टि कोई दूसरी वस्तु है तो उस की सत्ता का प्रमाण देना चाहिये ॥

वादी कहता है कि यदि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु के उत्पत्तिमान् होने से और उस का नाश देखने से सृष्टि को उत्पत्तिमान् ही स्वीकार किया जावे तो भी उस का कर्त्ता ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि सृष्टि स्वभाव से उत्पन्न होती है स्वभाव के अतिरिक्त सृष्टि का उत्पादयिता कोई नहीं। वादी की इस शंका में भी " कि सृष्टि का उत्पन्न करने वाला स्वभाव है ,, यह वादी की प्रतिज्ञा है। इस कारण इस प्रतिज्ञा की परीक्षा आवश्यक है इस स्थान पर यह प्रश्न होता है कि स्वभाव द्रव्य है या गुण है ? यदि वादी कहे कि स्वभाव द्रव्य है तो उस के गुण क्या हैं ? यदि कहे गुण है तो किस द्रव्य का है ? दूसरे गुणों से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हो सकता। सृष्टि द्रव्य है इस का कारण कोई द्रव्य ही हो सकता है ॥

वादी कहता है कि स्वभाव गुण है जो प्रकृति में रहता है प्रकृति के विशेष मिलाप से सम्पूर्ण वस्तुएं उत्पन्न हो जाती हैं अब हम वादी से कहते हैं कि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार हम स्वभाव को

को नाश हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि किसी वस्तु में छहों विकार एक साथ ही हों किन्तु अपने २ समय में एक या दो ही रहते हैं। जो उस वस्तु में अपने दूसरे सहचारियों के होने को सिद्ध करते हैं। जबकि हम सम्पूर्ण जगत् को विकार वाला प्रतीत करते हैं तो उसको किस प्रकार अनादि स्वीकार कर सकें हैं? अनादि वस्तु के लिये निर्विकार अर्थात् बढ़ने घटने से पृथक होना आवश्यक है। जब कि यह सृष्टि किसी प्रकार भी विकार रहित सिद्ध नहीं होती तो किसी प्रकार यह स्वरूप से अनादि नहीं कहला सकती। यदि कहो कि प्रवाह से अनादि है तो इस प्रवाह के चलाने वाले का होना (अर्थात् जो किसी समय बनावे और किसी समय न बनावे उचित है) इस पर वादी यह कहता है कि यद्यपि जगत् में भिन्न २ वस्तुयें दशा बदलती हुई दृष्टि पड़ती हैं परन्तु, समष्टि सृष्टि दशा नहीं बदलती इस कारण सृष्टि को स्वरूप से अनादि मानना ठीक है। यहां पर हम वादी से पूछते हैं कि वास्तव में सृष्टि इन सब वस्तुओं के समूह का नाम है या कोई दूसरी वस्तु है? यदि कहो कि वस्तुओं के समूह का नाम सृष्टि है तो जिस समूह के अवयव दशा बदलते हैं तो वह समूह विकार रहित नहीं हो सकता जैसे एक मनुष्य के हाथ, पांव, उदर, शिर आदि सम्पूर्ण अवयव निर्बल हो गया यदि वह कहे कि मेरा शरीर निर्बल नहीं हुआ तो उसे मूर्ख ही कहना पड़ेगा, क्योंकि इन अवयवों के समूह के अति-

मिलेंगे उस क्षण में वियोग अर्थात् घटने की शक्ति के कम होने से चार प्रमाणु पृथक् होंगे अर्थात् प्रति क्षण एक परमाणु बढ़ता जायगा घटने का अवसर कभी आवेगा ही नहीं परन्तु यह प्रतिज्ञा सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्योंकि सृष्टि में वस्तु घटनी बढ़ती दोनों दशाओं में पाई जाती है जो ऐसा मानना असम्भव है इस लिये यह प्रतिज्ञा स्थिर नहीं हो सकती कि प्रकृति में उत्पन्न करने की शक्ति अधिक हो दूसरे यदि नाश करने की शक्ति अधिक मानी जावे और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून तो उस दशा में जिस क्षण में पांच परमाणु पृथक् होंगे और चार मिलेंगे तो इस दशा में प्रतिक्षण प्रत्येक वस्तु से एक परमाणु घटना ही चला जायगा कोई वस्तु बढ़ेगी नहीं परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध प्रतीत होती है क्योंकि जगत् में बहुत वस्तुयें बढ़ती हुई दृश्य होती हैं तीसरी दशा यह है कि दोनों शक्तियें तुल्य स्वीकार की जावें उस दशा में जिस क्षण में एक वस्तु पांच परमाणु संयुक्त होंगे उसी क्षण में पांच ही वियुक्त होंगे क्योंकि दोनों शक्तियें बराबर हैं और तुल्य काम कर रही हैं इस दशा में सृष्टि की कोई वस्तु न बढ़ेगी और न घटेगी किन्तु सर्व सृष्टि एक ही दशा में रहेगी यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होने से स्पष्ट असत्य है क्यों कि प्रत्येक वस्तु सृष्टि में एकसी नहीं दीखती सब बढ़ती घटती हुई पाई जाती है जैसा दिन कल था वैसा आज का दिन नहीं है क्यों कि उस से अनुमान डेढ़ मिनट के

प्रकृति का गुण मान कर उस से सृष्टि की उत्पत्ति मान लेवें तो नाश किस से होगा क्योंकि उत्पन्न होना और नाश होना ये दो विरुद्ध गुण हैं जो किसी एक वस्तु में रह ही नहीं सक्ते अब वादी इस का उत्तर देता है कि प्रकृति में संसार के नाश और उत्पत्ति करने की शक्ति विद्यमान है उत्पत्ति संयोग या मिलाप से होती है प्रकृति के अन्तर्गत जल है जिस का गुण संयोग है और दूसरी वस्तु प्रकृति में अग्नि है जिस का काम विभाग करना है इस कारण जल से मिलाप होकर वस्तुओं की उत्पत्ति और अग्नि से अवयव छिन्न भिन्न होकर वस्तुओं का नाश हो सकता है। इस कारण अग्नि और जल दो प्रकार की वस्तुयें प्रकृति के अन्तर्गत होने से विरुद्ध गुणों की एकता का दोष इस स्थान पर नहीं घटता „ वादी के इस उत्तर को सुन कर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रकृति में उत्पन्न करने और नाश करने की शक्तियें तीन दशाओं में रह सकती हैं या तो उत्पन्न करनेकी शक्ति अधिक और नाश करने की शक्ति न्यून हो या नाश करने की शक्ति अधिक और उत्पन्न करने की न्यून हो या दोनो सम हो परन्तु प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति आदि का होना इन तीनों दशाओं में असम्भव है चौथी दशा कोई हो ही नहीं सकती यदि वादी उत्पन्न करने की शक्ति अर्थात् संयोग को अधिक मानेगा तो प्रत्येक वस्तु बढती ही चली जायगी कोई वस्तु घटेगी नहीं क्योंकि जिस क्षण में संयोग की शक्ति की अधिकता से उस वस्तु में पांच परमाणु

पृथिवी के प्रत्येक परमाणु में उनका स्वाभाविक धर्म जो कर्म है उसे पृथक करने के लिये उपस्थित है जिस से पृथिवी का आकर्षण भी नहीं हो सकता इस पर वादी कहता है कि प्रकृति का प्रत्येक परमाणु गतिमान है और पृथिवी का आकर्षण उनको रोके हुए है जिस को दूसरी शक्ति अर्थात् अग्नि आदि से सहायता मिलती है वह पृथिवी की शक्ति को दबाकर चली जाती हैं जिस को सहायता नहीं मिलती वह रुकी रहती है।

अब फिर प्रश्न होता है कि दूसरी शक्ति जिस की सहायता से एक गाडी चलती है और दूसरी उस की सहायता न होने से रुकी हुई है यह सहायता देना उस शक्ति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक ? यदि कहो स्वाभाविक धर्म है तो उस को दोनों गाड़ियों को सहायता देना चाहिये जिस से दोनों गाडियां चलेंगी या स्थिर रहेंगी एक का चलना एक का न चलना दोनों असम्भव हैं इस कारण जगत् को उत्पत्तिमान् और ईश्वर को उसका उत्पन्न करने वाला मानने के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से व्यवस्था होही नहीं सकती। इसी अवसरपर वादी फिर शङ्का करता है कि यदि यह भी स्वीकार कर लिया जावे कि कोई जगत् का कर्त्ता है तो उसके होने में प्रमाण क्या है ? क्यों कि यदि उस से होने में कोई प्रमाण हो तो उस के जानने से मुक्ति हो सकती है परन्तु

अधिक होता है आज की रात कल की गत रात के बराबर नहीं कि वह उस से न्यून होगी इस प्रकार विचार करने से सम्यक्तया बोध होता है कि स्वभाव से उत्पत्ति का होना असम्भव है दूसरे संयोग और वियोग दोनों गुण कर्म्म से उत्पन्न होने वाले हैं और कर्म्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक यह प्रश्न होता है? यदि कर्म प्रकृति में स्वाभाविक धर्म मान लिया जावे तो कोई प्राकृत वस्तु स्थिर नहीं पावेगी क्यों कि स्वाभाविक धर्म किसी वस्तु का रुक नहीं सक्ता परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्यों कि हम बहुत वस्तुओं को स्थिर देखते हैं ॥

अब वादी कहता है कि कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है परन्तु जिन वस्तुओं को हम स्थिर देखते हैं उन को पृथिवी की आकर्षण शक्ति ने रोका हुआ है यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगी फिर कोई प्राकृत वस्तु चलती हुई नहीं दीखेगी क्यों कि पृथिवी की आकर्षण शक्ति उस पर प्रभाव डालती है जैसे एक गाडी चलरही है दूसरी स्थिर है जब पृथिवी की आकर्षण शक्ति दोनों पर तुल्य प्रभाव रखती है ॥

प्रकृति में कर्म को स्वाभाविक धर्म मानने से एक का चलना और दूसरीका न चलना किस प्रकार सम्भव हो सक्ता है उक्तदोषों के अतिरिक्त पृथिवी भी प्रकृति से बनी है वह भी गतिमान होने से किसी नियम के आधीन नहीं हो सकती उसका प्रत्येक परमाणु गतिमान है इस कारण उनका संयोग होही नहीं सकता क्योंकि

पृथिवी के प्रत्येक परमाणु में उनका स्वाभाविक धर्म जो कर्म है उसे पृथक करने के लिये उपस्थित है जिस से पृथिवी का आकर्षण भी नहीं हो सकता इस पर वादी कहता है कि प्रकृति का प्रत्येक परमाणु गतिमान् है और पृथिवी का आकर्षण उसको रोके हुए है जिस को दूसरी शक्ति अर्थात् अग्नि आदि से सहायता मिलती है वह पृथिवी की शक्ति को दबाकर चली जाती है जिस को सहायता नहीं मिलती वह रुकी रहती है।

अब फिर प्रश्न होता है कि दूसरी शक्ति जिस की सहायता से एक गाडी चलती है और दूसरी उस की सहायता न होने से रुकी हुई है यह सहायता देना उस शक्ति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक? यदि कहो स्वाभाविक धर्म है तो उस को दोनों गाड़ियों को सहायता देना चाहिये जिस से दोनों गाडियां चलेंगी या स्थिर रहेंगी एक का चलना एक का न चलना दोनों असम्भव हैं इस कारण जगत् को उत्पत्तिमान् और ईश्वर को उसका उत्पन्न करने वाला मानने के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से व्यवस्था होही नहीं सकती। इसी अवसरपर वादी फिर शङ्का करता है कि यदि यह भी स्वीकार कर लिया जावे कि कोई जगत् का कर्त्ता है तो उसके होने में प्रमाण क्या है? क्यों कि यदि उस के होने में कोई प्रमाण हो तो उस के जानने से मुक्ति हो सकती है परन्तु

जिस से होने में कोई प्रमाण ही नहीं तो उनको किस प्रकार जान सकते हैं ? क्यों कि ईश्वर का तीनों काल में प्रत्यक्ष तो होताही नहीं और जिसका प्रत्यक्ष न हो उसे अनुमान से कैसे जान सकते हैं ? क्यों कि प्रत्यक्ष से व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर फिर उस के अनुसार अनुमान होता है और जिसका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणों से ज्ञान न हो उस के लिये शब्द प्रमाण होही नहीं सक्ता अब ईश्वर का प्रमाण से ज्ञान नहीं नहीं इस लिये ईश्वर का होना सत्य नहीं और नहीं उस के जानने से मुक्ति हो सक्ती है परन्तु अब वादी से पूछते हैं कि क्या जिन वस्तुओं का इन्द्रियों से ज्ञान न होवे नहीं होती यदि ऐसा मानो तो जिन इन्द्रियों से न देखने से तुम ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हो उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानते हो ? यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से देखते हैं तो आत्माश्रय दोष है अर्थात् स्वयं ही द्रष्टव्य वस्तु और स्वयं ही दर्शन का साधन नहीं होसक्ता यदि कहो हम दर्पण में अपनी आंख को देखते हैं इस लिये आंख का होना आंख से ही प्रतीत होता है परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्यों कि दर्पण में आंख नहीं दीखती किन्तु आंख का आभास उस से अनुमान के द्वारा जानना तो मान सके हैं परन्तु यह कहना कि आंख से आंख को देखते हैं सत्य नहीं किन्तु आंख से आंख के आभास को देख कर उस से आंख के होने का अनुमान करते हैं कि यह सत्य होगा अस्तु आंख का तो अनु

मान से ही ज्ञान होगया परन्तु रसनेन्द्रिय का किस से ज्ञान होगा ? न तो वह रूप है जो आंख से दीखे और न शब्द है जिस का कान से ज्ञान हो, प्रयोजन यह है।

कि रसना इन्द्रिय का ज्ञान किसी इन्द्रिय ने नहीं हो सक्ता ऐसे ही अन्येन्द्रियों की दशा है जिन इन्द्रियों से न दीखने के कारण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते वे तुम्हारीइन्द्रियां ही प्रत्यक्ष नहींतो तुम्हारा सिद्धान्त स्वयमेव खडित होता है इनके अतिरिक्त जो पुरुष ऐसा विचार रखते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणों का मूल है और जिस वस्तु का प्रत्यक्ष न हो उसका अभाव हैवे बहुत ही भ्रान्ति में पड़े हैं क्योंकि प्रत्यक्ष से किसी वस्तुका अनुमानके विना ज्ञान होही नहीं सक्ता प्रत्येक वस्तुके एक ही भाग का प्रत्यक्ष होता है शेष का अनुमान से ज्ञान हुआ करता है। जब केवल प्रत्यक्ष कोही प्रमाण माना जावे तो किसी वस्तु का भी ज्ञान न होगा " दूसरे अनेक ऐसी दशा है कि जिनके कारण वस्तुओं के विद्यमान होने पर भी उनका ज्ञान नहीं होताप्रथम अति समीप होनेसे जैसे नेत्रमें सुर्माहोता हैं परन्तु वह नहीं दीखता दूसरे बहुत दूर होने से जैसे लन्दन यहां से नहीं दीखता तीसरे अतिसूक्ष्म होने से जैसे परमाणु दृष्टि में नहीं आते चौथे अतिस्थूल होने से जैसे हिमालय पहाड़ संपूर्ण नहीं दीखता पांचवे वस्तु और इन्द्रिय के बीच में व्यवधान होने से जैसे आंख पर हाथ रखने से कोई वस्तु भी नहीं दीखती अथवा भित्ति (दीवार) के दूसरी ओर की

जिस से होने में कोई प्रमाण ही नहीं तो उनको किस प्रकार जान सकते हैं ? क्यों कि ईश्वर का तीन काल में प्रत्यक्ष तो होताही नहीं और जिसका प्रत्यक्ष न हो उसे अनुमान से कैसे जान सक्ते हैं ? क्यों कि प्रत्यक्ष से व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर फिर उस के अनुसार अनुमान होता है और जिसका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणों से ज्ञान न हो उस के लिये शब्द प्रमाण होही नहीं सक्ता जब ईश्वर को प्रमाण से जान नहीं सके इस लिये ईश्वर का होना सत्य नहीं और नहीं उस के जानने से मुक्ति हो सकी है परन्तु जब वादी से पूछते हैं कि क्या जिन वस्तुओं का इन्द्रियों से ज्ञान न होवे नहीं होतीं यदि ऐसा मानों तो जिन इन्द्रियों से न देखने से तुम ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हो उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानते हो ? यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से देखते हैं तो आत्माश्रय दोष है अर्थात् स्वय ही दृश्य वस्तु और स्वय ही देखने का साधन नहीं होसक्ता यदि कहो हम दर्पण में अपनी आंख को देखते हैं इस लिये आंख का होना आख से ही प्रतीत होता है परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्यों कि दर्पण में आंख नहीं दीखती किन्तु आंख का आभास उस से अनुमान के द्वारा जानना तो मान सके हैं परन्तु यह कहना कि आख से आंख को देखते हैं सत्य नहीं किन्तु आंख से आंख के आभास को देख कर उस से आंख के होने का अनुमान करते हैं कि यह सत्य होगा अस्तु आंख का तो अनु

क्रिया में नियम पाया जावे वह तो किसी प्रकार नियम बनाने वाले के विना होही नहीं सक्ती । घडी १२ घण्टे के पश्चात् अपने उसी स्थान पर, और जो घडी चौवीस घंटे में चावी लेती है वह एक सप्ताह में, इन उदाहरणों के होने से सम्य-कतया विद्वान् घडी वनाने वाले का होना प्रतीत होता है कोई मनुष्य भी जिस को बुद्धि हो घडी को उत्पत्तिवान् मान कर किसी अचेतन वस्तुने वनाई हुई नहीं जानता यद्यपि घडी वनाने वाले को घड़ी बनाते हुए प्रत्यक्ष नहीं देखा परन्तु अनुमान से घड़ी के कर्त्ता का होना उसे निश्चय हो जाता है क्यों कि स्वाभाविक क्रिया वाली वस्तु में लौट कर उसी स्थान पर आने का नियम हो नहीं सकता जैसे कि आगे चलना इञ्जन में भाप के होते हुए और किसी कल के विगड जाने से रुक जाना भी सम्भव है परन्तु अपने स्थान पर लौट आना किसी प्रकार सम्वभ नहीं जव तक कोई चेतन न लौ-टावे । इस लिये जिन वस्तुओं की कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसी स्थान पर आने की शक्ति है।

वह अवश्य ही चेतन के नियम से वँधी हुई है इस लिये सृष्टि के सम्पूर्ण भूगोल नियम में आधीन देखने में आते है चन्द्रमा सूर्य पृथिवी और तारागण सव के वीच में नियत क्रिया के अतिरिक्त और किसी प्रकार का नियम प्रतीत नहीं होता जिस के नियमों की परीक्षा हम सौ वर्ष पहले से ही

वस्तुएं नहीं दीखतीं छठे इन्द्रियों में दोष हो आंख से जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता और बहरे को शब्द का ज्ञान नहीं होता इत्यादि सातवें मन के अव्यवस्थित होने से भी नेत्रों के सामने चली आने वाली वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता जब कि इन सात दशाओं में विद्यमान वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष नहीं होता तो प्रत्यक्ष न होने से ईश्वर की सत्ता को स्वीकार न करना सत्य नहीं किन्तु ईश्वर के होने में अनुमान और शब्द प्रमाण विद्यमान है।

वादी शङ्का करता है कि अनुमान किस प्रकार हो सक्ता है क्यों कि जब तक व्याप्ति का ज्ञान न हो तब तक अनुमान नहीं हो सक्ता और व्याप्ति प्रत्यक्ष से ग्रहण की जाती है ईश्वर का प्रत्यक्ष हुआ नहीं इस लिये व्याप्ति के न होने से अनुमान नहीं हो सक्ता। परन्तु वादी का यह कथन सत्य नहीं क्यों कि यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि प्रकृति में क्रिया नहीं जब तक चेतन उस को क्रिया देता है तब तक ही क्रिया होती है। जिसका प्रमाण मृतक और जीवित शरीर को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है अर्थात् जब तक क्रिया देने वाला चेतन क्रिया दे रहा था तब तक यह शरीर क्रिया कर रहा था और जब चेतन पृथक हो गया तब यह शरीर जो प्रकृति से बना था क्रिया शून्य हो गया इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राकृत वस्तु में क्रिया चेतन के विना नहीं हो सक्ती क्यों कि

क्रिया में नियम पाया जावें वह तो किसी प्रकार नियम बनाने वाले के बिना होही नहीं सक्ती । घडी १२ घण्टे के पश्चात् अपने उसी स्थान पर, और जो घडी चौबीस घंटे में चाबी लेती है वह एक सप्ताह में, इन उदाहरणों के होने से सम्य-कतया विद्वान् घडी बनाने वाले का होना प्रतीत होता है कोई मनुष्य भी जिस को बुद्धि हो घडी को उत्पत्तिवान् मान कर किसी अचेतन वस्तुने बनाई हुई नहीं जानता यद्यपि घडी बनाने वाले को घडी बनाते हुए प्रत्यक्ष नहीं देखा परन्तु अनुमान से घडी के कर्त्ता का होना उसे निश्चय हो जाता है क्यों कि स्वाभाविक क्रिया वाली वस्तु में लौट कर उसी स्थान पर आने का नियम हो नहीं सकता जैसे कि आगे चलना इञ्जन में भाप के होते हुए और किसी कल के बिगड जाने से रुक जाना भी सम्भव है परन्तु अपने स्थान पर लौट आना किसी प्रकार सम्भव नहीं जब तक कोई चेतन न लौ-टावे । इस लिये जिन वस्तुओं की कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसी स्थान पर आने की शक्ति है ।

वह अवश्य ही चेतन के नियम से बँधी हुई है इस लिये सृष्टि के सम्पूर्ण भूगोल नियम में आधीन देखने में आते है चन्द्रमा सूर्य पृथिवी और तारागण सब के बीच में नियत क्रिया के अतिरिक्त और किसी प्रकार का नियम प्रतीत नहीं होता जिस के नियमों की परीक्षा हम सौ वर्ष पहले से ही

जान सके हैं कि अमुक तिथि में इतने बजे सूर्य ग्रहण वा चन्द्र-ग्रहण होगा जिस प्रकार हम घड़ी को देख कर प्रतीत कर सकते हैं कि इतनी देर के पश्चात् घड़ी की सुइयाँ अमुक स्थान पर मिल जायेंगी ऐसे ही सूर्य और चन्द्र ग्रहण भी नियम के आधीन होने से हम पहले से प्रतीत हो सकते हैं यद्यपि घड़ी को बनाने वाला चेतन मनुष्य हमें दृष्टि में दीखता है जिस से व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जान कर हम कह सकते हैं कि इस नियम पूर्वक जगत् को बनाने वाला चेतन परमात्मा है जिस प्रकार घड़ी को नियम पूर्वक चलती हुई

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ओ३म्

ट्रेक्ट नम्बर १५

ईश्वर प्राप्ति

द्वितीय भाग

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी की आज्ञानुसार
प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रेक्ट सोसाइटी ने
महाविद्यालय मैशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रेक्टसोसाइटी
(दफ्तर) स्टेशन केसामने
बाजार हरिद्वार.

४००० प्रति] [मूल्य २ पाई.

ओ३म्

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गौशाला, आर्टस्कूल; इत्यादि उपस्थित हैं ॥

ओ३म्

ईश्वर प्राप्ति

द्वितीय भाग

देख कर और उस के बनाने वाले को जो पाताल यानि अमेरिका आदि में ही भारत वर्ष में कभी आया ही नहीं दूर होने के कारण न देख कर हम यह कभी नहीं कहते कि इस घड़ी का कर्त्ता कोई नहीं यह अनादि है।

ऐसे ही यद्यपि अति समीप होने के कारण तथा अति सूक्ष्म होने के कारण हम प्रकृति जन्य आंखों से परमात्मा को नहीं देख सकते तो उस नियम से कामों को देख कर उस की सत्ता की प्रतीति होती है इस अवसर पर वादी यह कहता है कि यदि तुम अनुमान से ईश्वर को जगत् कर्त्ता बतलाओ गे तो बहुत से दोष आवेंगे प्रथम ईश्वर राग अर्थात् इच्छा से सृष्टि उत्पन्न करता है या इच्छा के बिना यदि कहो इच्छा से तो इच्छा दुःख से छूटने और सुख की प्राप्ति की होती है या न्यून वस्तु को समाप्त करने की होती है जब ईश्वर में इच्छा होगी तो वह अपूर्ण काम हो जायगा जिस में कि ईश्वर और

सांसारिक मनुष्यों में कोई भेद नहीं रहेगा यदि कहो राग अर्थात् इच्छा नहीं तो विना इच्छा के कोई काम नहीं होसकता क्यों कि इस के लिये सृष्टि में कोई दृष्टान्त नहीं मिलता जो जैनी इस प्रकार की शङ्का करते हैं।

जब हम उन से यह प्रश्न करते हैं कि तुम्हारे जिन तीर्थङ्करों ने तुम्हारे शास्त्र बनाए हैं वे राग अर्थात् इच्छा वाले थे या इच्छा रहित थे यदि कहो इच्छा वाले थे तो राग द्वेष आदि मिथ्या ज्ञान के कार्य हैं जैसा कि न्यायदर्शन में लिखा

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानाना मुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायादपवर्गः ॥

अ० १ सू० २ आ १ ॥

अर्थ—यहां पर प्रश्न यह था कि तत्वज्ञान से दुःख का विरोध नहीं है जब तत्वज्ञान और दुःख में विरोध नहीं तो तत्वज्ञान से दुःख का नाश किस प्रकार होगा ? क्यों कि नियम यह है कि जो विरोधी होता है वही नाश करने वाला होता है अन्धकार का नाश करने वाला सूर्य के प्रकाश से अतिरिक्त और कोई नहीं होता इस के उत्तर में महात्मा गौतमजी कहते हैं कि तत्वज्ञान मिथ्या ज्ञान का विरोधी है जब तत्वज्ञान होगा तो मिथ्या ज्ञान का नाश हो जायगा और

मिथ्या ज्ञान के नाश से उस से उत्पन्न होने वाला दोष अर्थात् राग और द्वेष नहीं होंगे इस सूत्र से स्पष्ट प्रकट है राग द्वेष मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होते हैं जहां मिथ्या ज्ञान है वहीं राग द्वेष होंगे ॥

अभिप्राय यह है कि राग द्वेष का होना मिथ्या ज्ञान के होने का प्रमाण है कोई मिथ्या ज्ञान के विना राग और द्वेष वाला हो ही नहीं सकता यदि आप के तीर्थङ्करों में राग द्वेष था तो वे मिथ्या ज्ञानी हुए जिस से उन की बनाई पुस्तकों का प्रमाण ही नहीं हो सकता यदि कहो वे राग से शून्य थे तो उन्हों ने पुस्तक कैसे बनाई यदि कहो जो कर्म अपने लिए किया जाता है उस में राग द्वेष की आवश्यकता है परोपकार सम्बन्धी कर्मों से राग द्वेष की आवश्यकता नहीं इस लिये तुम्हारे तीर्थङ्करों ने हमारे उपकार के लिये रचे हैं अब एक मनुष्य परोपकार के लिये विना राग कर्म कर सकता है तो तो सर्व शक्तिमान परमात्मा सब के उपकार के लिए सृष्टि क्यों नहीं रच सकता दूसरे हमें विना राग द्वेष के ही अयस्कान्त (चुम्बक पत्थर) आदि लोहे को खींचने का काम या लोहे से चुम्बक पत्थर की ओर चले जाने का काम होता हुआ प्रतीत होता है जिस से विना राग के कर्म का होना स्पष्ट प्रतीत होता है ।

वादी कहता है यदि तुम ईश्वर को परोपकार के कारण राग के विना सृष्टि कर्ता कहोगे तो यह सिद्ध नहीं होता क्यों-

कि सृष्टि की उत्पत्ति से बहुत से जीवों को दुःख होता है जिस से तुम्हारा ईश्वर न्यायकारी और दयालु सिद्ध नहीं होता किन्तु निर्दय और पक्षपाती पाया जाता है यह दयालु होता तो किसी को दुःख क्यों देता ? यदि वह न्यायकारी होता तो सब को समान बनाता किसी को मनुष्य का जन्म और उत्तम भोगने के सामान दिये किसी को बहुत ही दुर्दशायुक्त मनुष्य बनाया किसी को अन्धा, लूला, लङड़ा, बनाया किसी को सिंह, वृकादि दांतों वाले निर्दय शरीर दिये और किसी को गाय, भैंस आदि निर्बल शरीर दिये जो दांतों वाले मांसाहारियों का भोग बन गए। किसी को चींटी, मच्छरादिकों के बहुत ही तुच्छ शरीर दिये प्रयोजन यह है कि इस सृष्टि को विचार कर देखने से सम्यकतया बोध होता है कि कोई इस सृष्टि का उत्पादक हो तो वह निर्दय और पक्षपाती है इस का उत्तर यह है कि यदि ईश्वर अपनी इच्छा से जीवों की नाना प्रकार की दशाएं करता निःसन्देह निर्दयहोता परन्तु ईश्वर तो कर्मों के फल देता है जिस से यह भेद सहृत होता है जब वह अपनी इच्छा से शरीरों में कुछ भेद नहीं करता तो वह किस प्रकार पक्षपाती कहला सकता है और न निर्दयी कह सकते हैं क्यों कि उस ने तो न्याय किया है।

अर्थात् जीव के बुरे ही कर्मों का फल दिया है। अर्थात् जैसा जीव ने बोया है वैसा ही ईश्वर ने फल दिया है। इस दशा में उस पर पक्षपात और निर्दयता का कलङ्क लगाना प्रत्यक्ष अज्ञान है

वादी कहता है कि यदि कर्मों के फल से यह भेद है तो इश्वर के होने की कोई आवश्यकता नहीं क्यों कि कर्म स्वयं ही फल देते हैं । वादी की यह शङ्का भी सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है, क्यों कि कोई निर्वल सबल को बान्ध नहीं सक्ता । और न ही कोई अचेत न वस्तु चेतन को बाँध सक्ती है ।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कर्म चेतन है या जड़ ? दूसरे यह जीव से निर्वल है वा प्रवल ? यह तो सिद्धान्तीय बात है कि प्रत्येक कार्य अपने कारण से निर्वल होता है और यह भी सिद्धान्त है कि कर्म चेतन नहीं किन्तु जड है और न ही कोई उत्पन्न होने वाली वस्तु चेतन हो सकती है । इस दशा में कर्म स्वभाव फल देते हैं अर्थात् कर्त्ता चेतन को (जो कि क्रियावान् चेतन तथा प्रवल है) बांध लेते हैं किस प्रकार सत्य हो सकता है ? क्या किसी मनुष्य ने कभी देखा है कि किसी चोर ने चोरी की और चोर ने ही उस चोर को कारागार में डाल दिया ? जिस कारण से यह सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है इस लिये सर्वथा असत्य है । क्योंकि समयानुसार शासक (हाकिम) चोरों के लिये कारागार बनाते हैं और वे ही दण्ड देते हुवे दिखाई देते हैं ॥

वादी इस अवसर पर यह दृष्टान्त देता है कि जो मनुष्य मद्य पी लेता है वह अपने इस कर्म से मूर्छित होजाता है जिस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मद्यपान रूप अपने कर्म ने ही यह फल दिया । क्योंकि उस ने तो न्याय किया है अर्थात्

जीव के कर्मों का फल दिया है। अर्थात् जैसा जीव ने बोया है उसी का ईश्वर ने फल दिया है इस दशा में उस पर पक्षपात और निर्दयी होने का कलंक लगाना स्पष्ट मिथ्या है ॥

वादी कहता है कि यदि कर्मों के फलों का विभाग है तो ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि कर्म स्वयं फल देते हैं। वादी की यह शंका भी सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्यों कि कोई निर्बल बलवान् को बांध नहीं सकता और न कोई जड़ चेतन को बांध सकता है अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कर्म चेतन है अथवा जड़ दूसरे वह जीव से निर्बल है वा प्रबल यह तो सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य अपने कारण से निर्बल होता है और यह भी सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि कर्म चेतन नहीं किन्तु जड़ है न ही कोई उत्पत्तिमान वस्तु चेतन हो सकती है इस दशा में कर्म स्वयमेव फल दायक है अर्थात् कर्त्ता जीव को (जो कि चेतन और प्रबल है) बांध लेता है किस प्रकार सत्य हो सकता है? क्या किसी मनुष्य ने संसार में कभी देखा है कि किसी चोर ने चोरी की और चोरी ने उस चोर के लिये कारागार बनाया और चोर को कारागार में डाल दिया हो। इस लिये "कि यह सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है" स्पष्ट असत्य है क्योंकि उस समय के न्याय कर्त्ताओं ने ही चोरों के लिये कारागार बनाये और वेही दण्ड देते हुये दिखलाई देते हैं" इस अवसर पर वादी यह कहता है कि जो मनुष्य मद्य पीता है वह अपने इस कर्म से मूर्छित हो जाता है जिस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि मद्यपान रूप

अपने कर्म ने ही यह फल दिया परन्तु वादी का यह कथन भी उस की निर्बुद्धि का प्रमाण है क्योंकि मद्य जो कि एक द्रव्य है उस ने मन पर परदा डाला है जिस से मूर्छा विदित होती है इस लिये " कि मन सूक्ष्म है और मद्य स्थूल है " सूक्ष्म पर स्थूल का परदा पड़ जाना प्रत्यक्ष के अनुकूल है जो देखने में भी आता है निर्बल कर्म अपने करने वालों को कदापि नहीं बांध सकता कर्म का फल देने वाला परमेश्वर है वह ही फल देता है जो संसार में व्यवहार से प्रतीक्षण ज्ञात होता है उस से सम्यक्तया ईश्वर का होना सिद्ध है और मानसिक प्रत्यक्ष से भी ईश्वर जाना जाता है। जैसा कि उपनिषद् में लिखा है-

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्च न।
मृत्योः समृत्यु गच्छतिय इहनानेव पश्यति

यह परमात्मा योगी के मन से ही जाना जाता है इस जीवात्मा के अन्तर्गत परमात्मा के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है तात्पर्य यह है कि जीवात्मा में केवल परमेश्वर ही है क्योंकि यह नियम है कि स्थूल के अन्दर सूक्ष्म रह सकता है परन्तु सूक्ष्म में स्थूल नहीं रह सकता परन्तु वादी यहां पर पुनः शंका करता है कि सूक्ष्म आकाश में स्थूल नहीं रह सकता परन्तु वादी यहां पर पुनः शंका करता है कि सूक्ष्म आकाश में स्थूल

मृत्तिका और जल आदि रहते हैं इस कारण जो कह चुके हैं कि "सूक्ष्म में स्थूल नहीं रह सकता" ठीक नहीं। परन्तु वादी का यह विचार आशय को न समझने के कारण है क्योंकि आधार दो प्रकार से होता है एक व्याप्य व्यापक के सम्बन्ध से दूसरा आधार और आधेय सम्बन्ध से हमारा प्रयोजन व्याप्य और व्यापक के सम्बन्ध से था। वादी का दृष्टान्त आधार और आधेय के सम्बन्ध से है इस लिये प्रत्यक्ष ही मिथ्या है। और शब्द प्रमाण से भी ईश्वर का ज्ञान होता है जब कि इतने प्रमाण ईश्वर के होने में विद्यमान हैं तब यह कहना कि ईश्वर के होने में कोई प्रमाण नहीं" कैसे ठीक हो सकता है?

अब प्रश्न यह उठता है कि "यदि ईश्वर का होना मानभी लिया जावे तो उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? इस का उत्तर यह है कि प्राप्त वह वस्तु होती है जो कि पहिले दूर हो। अब सोचना चाहिये कि ईश्वर हम से दूर है या नहीं। यदि कहो दूर है तो उसकी प्राप्ति हो सकती है या नहीं? यदि दूर ही नहीं तो प्राप्ति का क्या तात्पर्य्य है? जहां तक देखा गया है दूरी ३ प्रकार की होती है। १ देश की दूरी, काल की दूरी, २ ज्ञान की दूरी ईश्वर सर्व व्यापक है इस लिये किसी वस्तु से भी देश (स्थान) की दूरी नहीं। वह नित्य है इस लिए काल की दूरी भी नहीं होसकती। इस लिये ", कि

जीवात्मा उसे जानता नहीं" ज्ञान की ही दूरी होसक्ती है। बस ज्ञान की दूरी ईश्वर को जानने से ही दूर होगी। इसी का नाम "ईश्वर प्राप्ति" है इस पर वादी कहता है कि ईश्वर को जानना तो किसी प्रकार से भी सम्भव नहीं क्यों कि उपनिषदों में लिखा है कि:—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु. शिष्यादन्यद्विदितादथो विदितादधि ॥

अर्थ—उस परमात्मा तक आंख नहीं जाती अर्थात् उसे आंख नहीं देख सक्ती क्यों कि वह रूप नहीं, और नहीं वाणी उसे कहसक्ती है क्योंकि उसके गुणोंकी अवधि नहीं और ना ही यह इन्द्रियें जानसक्ती हैं क्यों कि ब्रह्म को अन्दर माना है और इन्द्रियें बाहर देखती हैं इस कारण ब्रह्म इस प्रकार का है। ऐसा जानना संभव ही नहीं। किन्तु वह जाने हुए और न जाने हुए से भी पृथक है ॥

इसका उत्तर यह है कि उपनिषदों में यह भी लिखा है कि—

मनसैवे दृमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन।

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ कठ० ॥

अर्थ—मन से ही यह ब्रह्म जाना जाता है इस आत्मा के अन्दर केवल ब्रह्म ही रहता है और दूसरा कोई नहीं, वह बार २ जन्म मरण के दुःखों को प्राप्त होता है, जो आत्मा (जीव) के अन्दर नाना वस्तुओं को देखता (समझता) है।

इस कथन पर प्रश्न उठता है कि एक स्थान पर तो उपनिषदों ने लिखा कि यह परम ब्रह्म मन से नहीं जाना जाता और दूसरे स्थान पर यह लिखा कि वह मन ही से जाना जाता है, यह दोनों विरुद्ध बातें कैसे सत्य हो सकती हैं? इस से तो उपनिषदों का अप्रमाण होना सिद्ध होता है क्योंकि महात्मा गौतम जी ने न्याय दर्शन के शब्द परीक्षा प्रकरण में कहा है कि—

तदप्रमाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः न्याय० २ आ० १ सू० ५६॥

अर्थ-जिस शब्द में ३ प्रकार के दोषों में से कोई भी दोष पाया जावे वह शब्द अप्रमाण होता है। ये ३ प्रकार के दोष

ये हैं कि-१ ला—अनृत, २ रा—व्याघात, ३ रा-पुनरुक्ति। जब उपनिषदों में व्याघात दोष है तो वे अप्रमाण होंगी? इस का उत्तर यह है कि इस स्थल में व्याघात दोष नहीं किन्तु मन की दो दशाओं के होने का प्रमाण दिया है अर्थात् जब मन मलिन होता है तब उस मन में और दूसरे इन्द्रियों से परमात्मा को जान लेना असम्भव है। परन्तु जब मन शुद्ध हो जाता है तो उस से जीव और परमात्मा का दर्शन होसक्ता है और दूसरे यह बात है कि मन से परमात्मा नहीं जाना जाता किन्तु जैसे शुद्ध दर्पण से नेत्र अपने अन्तर्गत सुरमे और अपनी दशा को देखते हैं, ऐसे ही जब मन शुद्ध हो जाता है तो उस से जीवात्मा अपने स्वरूप और अपने अन्तर्व्यापक परमात्मा के स्वरूप को जानता है।

जब तक मन शुद्ध न हो तब तक उस से ब्रह्म का आनन्द उपलब्ध नहीं होता जैसे सूर्य का आभास समस्त पृथिवी मात्र पर पड़ता है परन्तु शुद्ध जल वा शुद्ध दर्पणादि के, अतिरिक्त सर्वत्र नहीं दीखता। ऐसे ही यद्यपि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है परन्तु मन के मलिन होने से प्रतीत नहीं होता। ब्रह्म को जानने के लिये मनुष्य को मन की शुद्धि के विना ही परिश्रम करते हैं उन का परिश्रम निष्फल जाता है और वे मनुष्य ब्रह्म के स्वरूप (भाव) से विरोधी हो जाते हैं - जैसे किसी मनुष्य के नेत्र में सुरमा है अब उसे प्रतीत नहीं होता

यह जब दूसरे मनुष्य से सुनता है कि नेत्रों का अंजन दर्पण से प्रतीत होता है जब वह दर्पण लेकर देखने लगता है तो दर्पण के मलिन होने से उसे प्रतीत नहीं होता तो वह उस मनुष्य को (जिसने बतलाया था कि दर्पण से अंजन प्रतीत होगा) झूठा समझता है । यह उसकी मूर्खता है क्यों कि शुद्ध दर्पण में प्रतीत होता है मलिन में नहीं, इस लिये जब तक मनकी मलिनता दूर न हो तब तक ईश्वर का दर्शन कैसे हो सकता है ?

अब यहां पर प्रश्न यह होता है कि ' मन में मलिनता क्या है ? इस का उत्तर यह है कि दूसरों को हानि पहुंचाने का विचार (चिन्तन) ही मलिनता है । यदि विचार किया जाय तो सम्प्रति प्रत्येक मनुष्य इसी चिन्ता में है कि कोई नेत्रों का अन्धा और गांठ का पूरा मिल जावे यदि दूकानदारों की ओर जावें तो यही उन की चिन्ता में है कि "हे शिवजी महाराज ! कोई नेत्रों का अन्धा और गांठ का पूरा भेज, प्राह विचार (वकील) लोगभी फौजदारी के सफ़र में फंसे हुए निर्बुद्धि धनी जो की ताक में रहा करते हैं । वैद्य (डाक्टर) जन भी ऐसे ही रोगियों के अन्वेषक (मुतलाशी) हैं । घूसग्राही अहलकार तो यह चाहते ही हैं । प्रयोजन यह है जिस को देखो इसी चिन्ता में लगा हुआ है ऐसे ही मन में मैल रखने वाले ईश्वर के मान (हस्ती) से इनकार करते हैं ।

अब प्रश्न होता है कि हम कैसे जानें कि मन अब शुद्ध हो गया। इस का उत्तर यह है कि जब निष्काम कर्म करने से तीन प्रकार की एषणा दूर हो जावे अर्थात् लोकैषणा (प्रतिष्ठादि की इच्छा) पुत्रैषणा (पुत्रादि सन्तान की इच्छा)। वित्तैषणा (धन की इच्छा)। तब समझ लेना चाहिये कि अब मन शुद्ध हो गया। वादी कहता है कि ऐसे अनेक जन संसार में वर्त्तमान हैं कि जो दूसरों का निष्काम उपकार करते हैं और उनको यह एषणा भी नहीं परन्तु ईश्वर उन कोभी नहीं प्रतीत होता।

इस का उत्तर यह है कि जैसे दर्पण के मलिन होने से उस में नेत्र और तद्गत अञ्जन प्रतीत नहीं होता। इसी प्रकार दर्पण के हिलते हुए होने सेभी आभास प्रतीत नहीं होता। वस जहां मन के मलिन होने से जीव और ईश्वर का ज्ञान नहीं होता वहां मन के चंचल होने से भी परमात्मा का ज्ञान नहीं होता जैसे हिलते हुये दर्पण को आंख और अंजन को देखने के लिये ठहराना आवश्यक है ऐसे ही जीव और ईश्वर जानने के लिये मन की चंचलता को दूर करना आवश्यक है। जिस का प्रतीकार केवल उपासनाकाण्ड है। योग के आठ अंग हैं। १–यम, २–नियम, ३–आसन, ४–प्राणायाम, ५–प्रत्याहार, ६–धारणा, ७–ध्यान, ८–समाधि ॥

प्र०–यम किसे कहते हैं ?

अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाःयमाः योगदर्शनं

उ०-अर्थ-अहिंसा अर्थात् किसी को न मारना और किसी प्रकार का दुःख देना। सत्यभाषण अर्थात् अपने ज्ञान के विरुद्ध कभी न कहना। चोरी का त्याग अर्थात् किसी का स्वत्व (अधिकार) लेने का प्रयत्न न करना। ब्रह्मचारी रह कर अर्थात् इन्द्रियों को वश में करके वैदिक शिक्षा का लाभ करना एवं, आग्रह और पक्षपात से पृथक (रहित) होना, ये पांच यम कहलाते हैं।

प्र०—नियम किसे कहते हैं ?

उ०—शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। योगद०

(देखो भाग तीसरा)

ओ३म्

टेरक्ट नम्बर १६

ईश्वर प्राप्ति

तृतीय भाग

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी की आज्ञानुसार
प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी ने
महाविद्यालय मैशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रैक्टसोसाइटी
(दफ्तर) स्टेशन के सामने
बाजार हरिद्वार.

४००० प्रति] [मूल्य २ पाई.

ओ३म्

ईश्वर प्राप्ति

तृतीय भाग

(१) प्रथम्-शुद्धि (शौच) चार प्रकार की होती है जैसा कि मनुजी ने लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति । विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।

अर्थ :— जल से शरीर के अङ्ग शुद्ध होते हैं स्नान आदि समस्त बाह्य शुद्धि के हेतु हैं । मनसत्यं अर्थात् सत्य आचरण, सत्यधर्म करने, एवं सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा की आज्ञा पालन

न से शुद्ध होता है। विद्या और तप से जीवात्मा शुद्ध होता है, तथा बुद्धि अर्थात् जीवात्मा का ज्ञान वेद से शुद्ध होता है।

(२) द्वितीय–सन्तोष अर्थात् जो कुछ भोग वश प्राप्त हो– उसी से प्रसन्न रहना अधिक प्राप्त करने की इच्छा न करना।

(३) तृतीय–तप अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से रोकने में जो कष्ट होता है, अथवा शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा आदि का दुःख धर्म सम्बन्धी कृत्य करने में सहना पड़ता है उसे सहन करना, किसी समय में भी चित्त को इन्द्रियों के (विषयों के) आधीन न होने देना।

(४) स्वाध्याय–नियम पूर्वक वेद वेदाङ्गों का अध्ययन. किसी दिन को पढ़ने से शून्य न जाने देना, वेद वेदाङ्गों और उपाङ्गों के अतिरिक्त दूसरी शिक्षा का नाम स्वाध्याय नहीं।

(५) ईश्वर पर पूर्ण विश्वासी होकर यह निश्चय रखना कि जो कुछ ईश्वर करता है वह अच्छा ही करता है, जो किया अच्छा ही किया, जो करेगा अच्छा ही करेगा। क्यों कि ईश्वर दया और न्याय के अतिरिक्त कुछ नहीं करता और दया न्याय तथा दोनों अच्छे हैं। बुरा कोई भी नहीं। यद्यपि पापी को

न्याय बुरा प्रतीत होता है (जो वास्तव में तो बहुत ही उत्तम है) इस पर एक गाथा है कि:-

एक राजा के मन्त्री के चित्त में दृढ़ विश्वास होगया कि ईश्वर जो कुछ करता है, किया है, करेगा, सब अच्छाही करता किया, और करेगा, एक दिन आखेट (शिकार) के समय राजा की दो अंगुलियें कटगईं। मन्त्री भी सङ्ग में था उस ने कहा कि जो कुछ ईश्वर ने किया उस में कुछ लाभ ही होगा। मन्त्री का यह कथन महाराज को बहुत बुरा लगा, उसने मन्त्री को निकाल दिया। जिस समय मन्त्री के समीप निकल जानेकी आज्ञा पहुंची तब उसने अति प्रसन्नता पूर्वक कहा कि ईश्वर जो कुछ करता है उसमें कोई लाभ ही होगा।

जब महाराज ने इस कथन को सुना तो चित्त में विचारा कि वास्तव में मन्त्री की बुद्धि बिगड़ गई क्यों कि उसे प्रत्येक हानि मात्र लाभ प्रतीत होता है।

निकल जाने से प्रथम तो मन्त्री नित्य महाराज के सङ्ग रहा करता था। अब महाराज एकाकी (अकेले) मृगयार्थ गए घोड़ों के वेग तथा आंधी आदि के कारण एक ही बार अपने राज्य से निकल कर किसी अन्य राजा के राज्य में जा पहुंचा राजा दीर्घ रोगी था। उस को कहा गया कि देवी की भेट के लिये एक मनुष्य को बलिदान दो, राजा ने यह आज्ञा (हुकुम) दे रक्खीथी कि प्रातःकालको जो मनुष्य अमुक द्वार (दवाजा) से आवे उसे बलिदान देदो। दैवात् राजा निर्दिष्ट द्वार से ही

पहुँचा। राजा के भृत्यवर्ग आज्ञानुसार उसे वलिदान कर ने को लेगए। राजा ने आत्म रक्षा के लिये अनेक उपाय किये परन्तु भृत्यों ने एक न सुनी। जिस समय राजा के वस्त्र उतरवा कर स्नान कराना चाहा त्योंही उसकी दो अंगुलियें कटी-हुई मिली पुजारियों ने कहा कि अङ्गभङ्ग की वलि देवी को नहीं चढ़ सक्ती। तब महाराज को भृत्यों ने छोड़ दिया।

महाराज ने मन में विचार किया कि उन उङ्गलियों का कटना ही शरीर रक्षा का कारण हुआ, नहीं आज कोई आशा नहीं थीं वास्तव में मन्त्री ने ही ठीक कहा था कि--

" ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छा ही करता है,,

जब राजा लौट कर अपने स्थान पर पहुंचा, तो मन्त्री को बुला कर पुनः भृत्य कर लिया। मन्त्री ने पुनरपि वेही वाक्य कहे कि ईश्वर जो कुछ करता है वह अच्छा ही करता है। राजा ने मन्त्री से कहा कि हमारी जो दो अंगुलियें कट-गईं थीं उन का प्रयोजन तो हमने समझ लिया परन्तु तुह्मारे निकल जाने में जो प्रयोजन था वह नहीं समझा, मन्त्री ने कहा कि वह तो सुगम वात है कि यदि मैं निकल न जाता तो अवश्य आप के सङ्ग होता, आप तो अङ्ग भङ्ग होजाने के कारण बच जाते परन्तु मेरा वलिदान हो जाता। अतः ईश्वर ने मुझे सुरक्षित किया।

वस उपर्य्युक्त पांच नियम हैं।

--ॐ-- क्या है ?

(उ०) स्थिरसुखमासनम् ॥ यो० द०

अर्थात् जिस से सुख पूर्वक प्राणायामादि कर सकें वही आसन है। कितने ही आचार्य्य कमलासन, पद्मासन आदि चौरासी प्रकार के आसन बतलाते हैं कितने ही इनसेभी अधिक कहते हैं। प्रयोजन इस से यही है कि निर्विघ्न काम जिस से हो सके वही आसन है।

(प्र०) प्राणायाम किसे कहते हैं ?

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ॥

(उ०) अर्थात् आसन पर बैठ कर अन्दर आने वाले श्वास और बाहर जाने वाले श्वास की जो स्वाभाविक गति है उसे दूर करके स्वेच्छा से अनुकूल कर लेने का नाम प्राणायाम है बाहर को श्वास को निकाल कर कुछ देर अंदर न आने देना, बाहर ही रोकना, अंदर रोकना, एकही बार छोड़ देना। इत्यादि

प्रश्न—प्राणायाम का क्या फल है ?

उत्तर—दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथामलाः ॥ यथेन्द्रियाणांदह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ मनुः

अर्थात् जैसे अग्नि में फूंकनी आदि से तपानेसे सुवर्णादि धातुओं के निःशेष मल भस्म हो जाते हैं। वैसे ही प्राणों का निग्रह (प्राणायाम से अपने वश में करने) से इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं। इस के अनन्तर—

योगाङ्गाऽनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। योगदर्श

जो मनुष्य योग के अङ्ग प्राणायामादि को करते रहते हैं उन मनुष्यों के जब तक मोक्ष न हो तब तक अन्तः करण की मलिनता का क्षय, और ज्ञान का प्रकाश रात्रि दिन निरन्तर होता रहता है इन्द्रियों के दोषनष्ट होने से ज्ञानोत्पत्ति इसलिये कही है कि इन्द्रियों के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है जैसा कि महर्षि कणादने भी अपने वैशेषिक दर्शन में कहा है कि—

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाऽविद्या। वैशेषिक दर्शन

अर्थात् इन्द्रियों के दोष से तथा संस्कारों के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है। जब इन्द्रियों के दोष प्राणायाम से मनुजी के कथनाऽनुसार भस्म होजायंगे तब ज्ञान की वृद्धि होगी। तथा जो मनुष्य प्राणों को अनियम व्यतीत करते हैं वे

थोड़े ही काल में मर जाते हैं क्योंकि शास्त्रों में प्राणों को ही आयु माना है जैसा कि लिखा है—

प्राणो वै भूतानामायुः ।

अर्थात् प्राण ही प्राणियों की आयु है। और देखा भी है कि जबतक प्राण रहते हैं तभी तक मनुष्य जीवित रहता है प्राणों के निकल जाने पर पुन जीवित नहीं रहता है जैसे इंजन में वाष्प (भाफ) ही काम करती है यदि उस का नियन्ता (ड्राइवर) उस वाष्प को अनियम में चला कर काम लेता है तब कभी भी उस का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और नहीं वाष्प के निकल देने पर सिद्ध होता है इसी प्रकार यदि इस शरीर का नियन्ता जीवात्मा प्राणों को अनियम में चला कर अपना मुख्य प्रयोजन सिद्ध करना चाहे तो भी कभी सिद्ध नहीं हो सकता।

प्रश्न—तुम तो आयु को नियत परिमाण मानते हो पुनः प्राणायामादि के करने से न घटेगी। तथा प्राणायामादि के न करने से घटेगी नहीं पुन यह क्यो कहा कि प्राणायाम न करने से अल्पकाल में ही मर जाता है।

उत्तर—प्रियवर ! यह प्रश्न तुमने बहुत अच्छा किया इस पर बहुतों को भ्रम है इस का उत्तर यह है कि हम आयु को (जो वास्तव मे उपनिषदों के अनुसार प्राण ही है) बढने वाली तथा घटने वाली नहीं मानते किन्तु काल को घटने वाला

तथा बढ़ने वाला मानते हैं अतएव हमने " थोडे काल में मर जाते हैं „ यह कहा था न कि थोडे ही आयु में मर जाता है इस से यह शङ्का आप की पक्ष पोषक नहीं है। इसका उदाहरण यह है कि जैसे किसी मनुष्य को ३० तीस सेर अन्न मासिक मिलना है यदि वह मनुष्य आध सेर अन्न प्रति दिन खाता है तो उसका १५ सेर अन्न अब शेष रहेगा अर्थात् वहअध्धा सेर आध सेर यदि प्रति दिन खाता रहे तो दो मास पर्य्यन्त निर्वाह कर सकता है। यदि वही मनुष्य उस तीस सेर अन्न में से दो सेर प्रतिदिन खाता रहेतो १५ ही दिवस निर्वाह कर सकता है अर्थात् १ मास भी व्यतीत नहीं कर सकता। यहां यह विचारणीय है कि उस मनुष्य का तीस सेर अन्न उतना ही रहता है अर्थात् यदि वह उक्त प्रकार से दो मास पर्य्यन्त निर्वाह कर लेता है तब क्या उसका अन्न तीस सेर से बढ जाता है ?

उत्तर—नहीं। तो क्या जब वह उक्त प्रकार से १५ दिन ही निर्वाह करता है तो क्या उसका वह तीस सेर अन्न कुछ घट जाता है उ०—यह भी नहीं। अभिप्राय यह है।
कि काल तो घटता बढ़ता ही है। परन्तु अन्न उतना ही रहता है बस इसी प्रकार जो मनुष्य प्राणों को नियमाऽनुसारप्राणायामादि के द्वारा रोकता हुआ कम व्यय करता है वह मनुष्य दीर्घकाल पर्य्यान्त जीवित रहता है एवम् जो मनुष्य अनियम प्राणों को व्यय करता है वह अल्प काल तक जीवित रहता है जो मनुष्य महान् हो अल्प काल तक जीने वाला हो वह उस से बढ़

थोड़े ही काल में मर जाते हैं क्योंकि शास्त्रों में प्राणों को ही आयु माना है जैसा कि लिखा है—

प्राणो वै भूतानामायुः ।

अर्थात् प्राण ही प्राणियों की आयु है। और देखा भी है कि जबतक प्राण रहते हैं तभी तक मनुष्य जीवित रहता है प्राणों के निकल जाने पर पुनः जीवित नहीं रहता है जैसे इंजन में वाष्प (भाफ) ही काम करती है यदि उस का नियन्ता (ड्राइवर) उस वाष्प को अनियम में चला कर काम लेता है तब कभी भी उस का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और नहीं वाष्प के निकले देने पर सिद्ध होता है इसी प्रकार यदि इस शरीर का नियन्ता जीवात्मा प्राणों को अनियम में चला कर अपना मुख्य प्रयोजन सिद्ध करना चाहे तो भी कभी सिद्ध नहीं हो सक्ता।

प्रश्न—तुम तो आयु को नियत परिमाण मानते हो पुनः प्राणायामादि के करने से न बढ़ेगी। तथा प्राणायामादि के न करने से घटेगी नहीं पुनः यह क्यों कहा कि प्राणायाम नकरने से अल्पकाल में ही मर जाता है।

उत्तर—प्रियवर ! यह प्रश्न तुमने बहुत अच्छा किया इस पर बहुतों को भ्रम है इस का उत्तर यह है कि हम आयु-को (जो वास्तव में उपनिषदों के अनुसार प्राण ही है) बढ़ने वाली तथा घटने वाली नहीं मानते किन्तु काल को घटने वाला

प्र०—प्रत्याहार किसको कहते हैं?

उ०--स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपाऽनुकारइवेन्द्रियाणाम्प्रत्याहारः । यो० दर्शन पाद २-५४

अर्थात् जब यम, नियम, आसन, प्राणायाम रूप पूर्वाङ्गों के अनुष्ठान से मन अपने वश में होजाता है क्योंकि मन की गति प्राणों की गति के अनुसार वैसे ही होती है जब प्राण मनुष्य के वश में प्राणायामादि से हो जाते हैं अर्थात् मनुष्य के अनुकूल गति करते हैं तब प्राणों के अनुसारी होने से मन भी पुरुष के वश में हो जाता है और मन को पुरुष के वश में होने के पश्चात् इन्द्रियें भी पुरुष के वश में हो जाती हैं क्योंकि इन्द्रियें मन के आधीन हैं मन जिस ओर इन्द्रियों को प्रवृत्त करता है उसी ओर इन्द्रियें चली जाती हैं इस बात को उपनिषदों में इस प्रकारविवरण किया है कि—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः

कर अधिक काल तक जीवित रहता है परन्तु दोनों दशाओं में प्राणरूपी आयु उतनी ही रहती है इसलिये आयु की नियत मानने पर भी काल के अधिक अथवा न्यून हो जाने से हमारे सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आ सकता।

और दूसरा उत्तर इसका यह भी है कि बढ़ना एक और प्रकार से भी होता है अर्थात् जो मनुष्य तत्वज्ञानी होता है उस की आयु बढ़ जाती है और जो मिथ्या ज्ञानी होता है उसकी घट जाती है इसका उदाहरण यह है कि जैसे एक मनुष्य बाजार में अन्नादि खरीदने जावे वह बाजार के भाव को ठीक जानता है तो १ रु० के जितने अन्नादि भावानुसार आते हैं उतने ही ले आता है परन्तु जो मनुष्य अन्नादि के भाव को यथावत् नहीं जानता वह मनुष्य उसी १ रु० के अन्नादि कम लेकर भी चला आता है। परन्तु दोनों दशाओं में मूल उतना ही रहता है। बस इसी प्रकार जो मनुष्य तत्वज्ञानी होता है वह अपनी आयु में ज्ञान के अनुसार सिद्धान्तों को ग्रहण करता है परन्तु जो मनुष्य मिथ्याज्ञानी होता है वह शास्त्रनिषिद्ध कर्मों को ग्रहण करके अपने जीवन को नष्ट भ्रष्ट कर लेता है परन्तु दोनों दशाओं में प्राणरूपी आयु उतनी ही रहती है॥

इत्यादि अनेक प्रकार हैं जिससे उपचार से आयु की भी वृद्धि मानी गई है प्रयोजन यह है कि प्राणायामादि करने योग्य है। अब हम प्रकरण पर आते हैं प्राणायाम से आगे पञ्चमाङ्ग प्रत्याहार है अब हम प्रत्याहार को बतलाते हैं —

कर लेता है तब घोड़े भी स्वाधीन होजाते हैं ॥

बस इसी प्रकार मन के वश में होने से इन्द्रियरूपी घोड़ों का भी वश में होना समझ लेना चाहिये। और जब इन्द्रियां वश में हो जाती हैं तब मनुष्य अधर्म रूप मार्ग से हटा कर धर्म मार्ग में चलाता है। जहां पहले मन में द्रोहादि रहते थे उस मनुष्य के चित्त में दया आदि शुभ गुण वास करते हैं। ऐसे ही जहां वाणी में मिथ्या भाषण आदि निवास करते थे वहां उस मनुष्य की वाणी में सत्य भाषणादि शुभ गुण रहते हैं। ऐसे ही जहां शरीर के कर आदि अङ्गों में हिंसा आदि रहते थे वहां दान आदि शुभ गुण रहते हैं इत्यादि जानना। हमारे बहुत से भ्राता यह कहेंगे कि अनेक मनुष्य यम नियमों के बिना ही स्वतन्त्र रह सक्ते हैं पुनः यह इतना झगड़ा क्यों रक्खा कि जो अति दुष्तर है। क्यों कि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता चाहे जो कुछ धर्म अधर्मादि करे वह स्वतन्त्र है।

जो स्वतन्त्र है उस मन आदि सब वश में हैं ही। पुनः क्यों यह क्लेश सहे ?

उ०—इस का उत्तर यह है कि बहुत सी वस्तुएं तो मन को लाभ पहुंचाती हैं जो कि प्रकृति की बनीहुई हैं। और बहुतसी वस्तुएं आत्मा को लाभदायक हैं बस जब यह आत्मा मन शरीर आदि को अपना समझता है तो यह मन के लाभ में ही अपना लाभ समझ कर प्राकृतिक पदार्थों की प्राप्ति करने में प्रवृत्त होता है। अर्थात् मन के आधीन हो जाताहै।

प्रग्रहमेव च । इन्द्रियाणि हयाना-हुर्विषयान्विद्धि गोचरान् । उ० नि०

अर्थात् इस शरीर को रथ रूपी मानकर यह अलङ्कार घटा या है कि यह शरीर रूपी एक है रथ इस रथ का स्वामी कौन है ? इस शरीर रूप रथ का स्वामी आत्मा है । इस रथ का नियन्ता सारथी अर्थात् नियम पूर्वक घोड़ों को हांकने वाला कौन है ? बुद्धि ही इस रथ का नियन्ता है । सारथि के हाथ में प्रग्रह (बाग) होती है जिनसे वह नियम में रखता है यहां प्रग्रह रूप है । यदि प्रग्रह भी है तो वह हांकता किनको है अर्थात् घोड़े कौन है ? इन्द्रियां ही घोड़े हैं । इन्द्रियरूप घोड़ों के चलने का मार्ग कौन है ? इन्द्रियों के चलने का मार्ग विषय है क्योंकि इन्द्रियें विषयों की ओर ही दौड़ती है ॥

अब यहां यह समझना चाहिये कि जो पुरुष बुद्धिमान् होता है वह अपनी बुद्धि को प्रथम सुधारता है क्योंकि जबतक रथ का नियन्ता हांकने वाला ही स्वयं ठीक नहीं होता तबतक कभी घोड़े अभीष्टस्थान पर नहीं पहुंचसके क्योंकि सारथि के निपुण होने से घोड़े भी अभीष्टस्थान को पहुंचसके है एवमेव बुद्धिरूपी सारथि के सुधर जाने से ही मनरूपी -प्रग्रह वश में रह सकती हैं अन्यथा नहीं यही करण है कि दुर्बुद्धि पुरुषों का मन वश में नहीं होता । जब मनुष्य बुद्धि को यमादि से सुधार कर मन को निपुण सारथि प्रग्रह (बागों) को अपने वश में

कर लेता है तब घोड़े भी स्वाधीन होजाते हैं ॥

वस इसी प्रकार मन के वश में होने से इन्द्रियरूपी घोडों का भी वश में होना समझ लेना चाहिये। और जब इन्द्रियां वश में हो जाती हैं तब मनुष्य अधर्म रूप मार्ग से हटा कर धर्म मार्ग में चलाता है। जहां पहले मन में द्रोहादि रहते थे उस मनुष्य के चित्त में दया आदि शुभ गुण वास करते हैं। ऐसे ही जहां वाणी में मिथ्या भाषण आदि निवास करते थे वहां उस मनुष्य की वाणी में सत्य भाषणादि शुभ गुण रहते हैं। ऐसे ही जहां शरीर के कर आदि अङ्गों में हिंसा आदि रहते थे वहां दान आदि शुभ गुण रहते हैं इत्यादि जानना। हमारे बहुत से भ्राता यह कहेंगे कि अनेक मनुष्य यम नियमों के विना ही स्वतन्त्र रह सक्ते हैं पुनः यह इतना झगड़ा क्यों रक्खा कि जो अति दुप्तर है। क्यों कि प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता चाहे जो कुछ धर्म अधर्मादि करे वह स्वतन्त्र है।

जो स्वतन्त्र है उस मन आदि सब वश में हैं ही। पुनः क्यों यह क्लेश सहे ?

उ०—इस का उत्तर यह है कि बहुत सी वस्तुऐं तौ मन को लाभ पहुंचाती हैं जो कि प्रकृति की बनीहुई हैं। और बहुतसी वस्तुऐं आत्मा को लाभदायक हैं बस जब यह आत्मा मन शरीर आदि को अपना समझता है तौ यह मन के लाभ में ही अपना लाभ समझ कर प्राकृतिक पदार्थों की प्राप्ति करने में प्रवृत होता है। अर्थात् मन के आधीन हो जाताहै।

मन की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता और मन की अप्रसन्नता में ही अप्रसन्न रहता है तब यह काम क्रोध लोभादि से परिपूर्ण हो जाता है जब तक इन काम क्रोधादिकों प्रतीकार (निवृत्ति) नहीं कर चुकता तब तक इस को शांति नहीं होती अर्थात् जीवात्मा का अपने हितैषी एक सच्चिदानन्द ईश्वर से हित की आशा त्याग कर मन के हितकारी प्राकृतिक पदार्थों में आसक्त होना ही परतन्त्रता है यही परतन्त्रता दुःख नाम से कथन की गई है कि—

बाधनालक्षणं दुःखम् । न्या. द. ॥

अर्थात् परतन्त्रता ही दुःख है। जो मनुष्य अपने मन को वश में नहीं करते वे अपनी इन्द्रिय शरीरादि को भी वश में नहीं कर सके। और जिन के वश में अपने शरीरादि नहीं होते व अपने कुटुम्ब कोभी वश में नहीं कर सके जैसे दुर्बल वृद्ध पुरुष अपने पुत्र पौत्रादि को वश में नहीं कर सके, जो अपने कुटुम्ब कोभी वश में नहीं कर सके वे अपने ग्राम नगर देशादिकों कैसे वश में कर सके हैं।

पुन वे दूसरे देशों के मनुष्यों पर क्या शासन (हकूमत) करेंगे? । प्रयोजन यह है कि अपने मन का वश में करना ही इन्द्रिय शरीरादि के वश में होने का कारण है मनुष्य को उचित है कि मन को ईश्वर की ओर लगावे जब मन ईश्वर की ओर लगेगा तब प्रकृति की ओर न जायगा क्यों कि मन

में दो ज्ञान एक काल में नहीं होते मन के प्रकृति से निवृत्त होने से इन्द्रियें भी विषयों से निवृत्त हो जायंगी अर्थात् चित्त में लीन हो जायंगी इसी का नाम प्रत्याहार है ।
जब मन अपने वश में हो जाता है तब उस को वहीं स्थिर कर के ईश्वर का ध्यान किया जाता है उस के स्थिर करने का नाम धारणा है जैसा कि कहा है कि--

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा । यो. द. पा. ३

मन की चञ्चलता को छुड़ा कर एक देश में ईश्वर ध्यानार्थ उसे स्थिर करना धारणा कहाती है यही धारणा योग का छटा अङ्ग है । इस के अनन्तर ध्यान है ।

प्र०---ध्यान किसे कहते हैं ?

उ०--जब प्राकृतिक विषयों से पृथक होकर एक निराकार सच्चिदानन्द की ओर मन को प्रवृत्त करना ध्यान है ।

प्र०---वाह जी वाह ! क्या कभी निराकार का ध्यान हुआ करता है ? भला जिस की कोई आकृति ही नहीं उस का ध्यान कैसा ? ध्यान तो सर्वथा साकार का ही हुआ जाता है

उ०---प्रथम तुम ध्यान किस को कहते हो ? यदि कहो कि ध्यान उसे कहते हैं कि जिस वस्तु को हमने देखा वा सुना है उस का स्मरण हो जाना ही ध्यान है तो यह तुम्हारा भ्रम है देखिये महात्मा कपिल मुनि अपने सांख्य शास्त्र में क्या बतलाते हैं कि-

ध्यानं निर्विषयं मनः। सां. द. ॥

अर्थात् जब मन, रूप रस, गन्ध, शब्द, दुःख सुखादि सम्पूर्ण विषयों से रहित हो जावे उस दशा का नाम ध्यान है जब तक मन में विषय रहेंगे तब तक वह ध्यान ही नहीं कह ला सक्ता। और जिस को तुम ध्यान २ कहते हो वह तो इन विषयों के अन्तर्गत ही है क्यों कि साकार पदार्थों में रूप रसादि के अतिरिक्त अन्य होता ही क्या है ? जिस का वह ध्यान करे ? और तुम जो यह कहो कि ईश्वरभी साकार है तो भी तुम्हारा भ्रम है क्यों कि तुम साकार के अर्थ से अनभिज्ञ हो क्यों कि साकार उस कहते हैं कि-

नियताऽवयवसमूहत्वमाकारत्वम् तद्वान् साकार इति ॥

अर्थात् नियत अवयवों के समूह को आकार कहते हैं। और जिस में नियत अवयवों का समूह हो उस साकार कह ते हैं अथवा सुपरंद को निराकार और पुरुष को साकार समझना चाहिये। प्रयोजन यह है कि यदि हम ईश्वर को साकार (पुरुष) मान लें तो ईश्वर सावयव और अनित्य हो जायगा परन्तु ईश्वर को अनित्य माननाभी महामूर्खता है इस से ईश्वर का साकार मानना बड़ा अज्ञान है।

॥ ओ३म् ॥

वैदिक-संध्या ।

जिस को

पुस्तकाध्यक्ष आर्य्यसमाज वच्छोवाली लाहौर ने छपवाया ।

नोट—सब वैदिक धर्म्म सम्बन्धी पुस्तक आर्य्य समाज लाहौर (वच्छोवाली) के पुस्तकालय से सस्ती मिलती हैं

सन् १९०५

पन्जाब एकानोमीकल यन्त्रालय लाहौर में प्रिण्टर ला० लालमणि के अधिकार से छपवाई

॥ ओं ॥

सन्ध्या ॥

॥ अथाचमन मन्त्रः ॥

ओं शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥
यजुर्वेद, अध्याय ३६, मन्त्र १२ ॥

ओं	परमेश्वर	भवन्तु	होवें [के लिये
शं	कल्याण	पीतये	पूर्णानन्दकी प्राप्ति
नः	हम पर [कल्याण के लिये]	शं	कल्याण
देवी	सर्व प्रकाशक	यः	जो
अभिष्टये	मनोवाञ्छित	अभिस्रवन्तु	वर्षा करें
आप	सर्वव्यापक	नः	हम पर

सर्व व्यापक और सर्व प्रकाशक परमेश्वर मनोवाञ्छित आनन्द की प्राप्ति के लिये हमको कल्याणकारी हो और हम पर सुखकी सर्वथा वृष्टि करे ॥

॥ अथेन्द्रिय स्पर्शः ॥

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं

चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओं नाभिः ओं हृदयम् । ओंकण्ठः । ओंशिरः । ओंबाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतल कर पृष्ठे ॥

वाक्...वाणी	कण्ठः...गला
प्राणः...श्वास	शिरः...सिर
चक्षुः...आंख	बाहुभ्यां...हाथों से
श्रोत्रम्...कान	यशोबलं...कीर्ति, शक्ति
नाभिः...टुण्डी	करतल...हथेली
हृदय...मन	करपृष्ठे...हाथकीपीठसे

हे अन्तर्यामिन् मैं आप के सन्मुख धर्म से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं जान बूझ कर अपनी ५ ज्ञान और ५ कर्म इन्द्रियों से, अर्थात् वाक्, प्राण, चक्षुः, श्रोत्र, नाभि, हृदय कण्ठ, सिर बाहु, हाथ की हथेली और पीठ से कदापि पाप नहीं करूंगा ॥

॥ अथ मार्जन मन्त्रः ॥

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः

पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

भूः...प्राण स्वरूप	तपः. .दंडदाता ज्ञानस्वरूप
पुनातु ..पवित्र करे	सत्यं. सतस्वरूप अविनाशी
भुवः दुःख नाशक	पुनः...फिर
स्वः ..सुख स्वरूप	खं...व्यापक
महः बड़ा	ब्रह्म. .बड़ाईश्वर
जनः . पिता	सर्वत्र...स्थानमें

पर मे हे दयानिधे,निर्बल हूं अतएव आपकी शरण हूं सो आप ही इन इन्द्रियोंको अर्थात् शिर,नेत्र,कण्ठ हृदय, नाभि,पाद,शिरादि सबको पवित्र करके बलवान् कीजिये ।

॥ प्राणायाम ॥

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओंमहः । ओंजनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ।

प्राण स्वरूप । पवित्र करने हारा । आनन्द स्वरूप । सबसे बड़ा । सबका पिता । सबका जाननेवाला । अविनाशी ।

॥ ईश्वर रचना चिन्तन ॥

ओ३म् ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः । १ ।

ऋतं...वेद	अध्यजायत...उत्पन्न किये
च...और	ततः...फिर
सत्यं...कार्य्यरूप प्रकृति	रात्रि...प्रलय
अभीद्धात्...ज्ञानमय से	समुद्रः } पृथिवी और मेघ म-
तपसः...अनन्तसामर्थ्य से	अर्णवः } ण्डलमेंजोमहासमुद्र है

परमेश्वरकी ज्ञानमय अनन्त सामर्थ्य से वेद विद्या और कार्यरूप प्रकृति उत्पन्न हुए उसी सामर्थ्यसे प्रलय और उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघ मण्डल में जो महासमुद्र है उत्पन्न हुए ॥

ओ३म् समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्यमिषतोवशी । २ ।

अधि...पीछे	विदधत्...बनाये
संवत्सर...काल विभाग	विश्वस्य...जगत के
अजायत...बनाए	मिषतः...सहज स्वभाव से
अहो रात्रि...दिनरात	वशी...स्वामी

हे पिता आप हमारे वाम ओर से व्याप्त हैं, और हमारे परम स्वामी है आप स्वयम्भू और हमारे रक्षक हैं, आप ही बिजुली द्वारा हमारे रुधिर की गति और प्राण की रक्षा करते हैं। आपको० अग्रे पूर्ववत् ॥

ओ३म् ॥ ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु, यो३ऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः

ध्रुवा नीचे की ओर	ग्रीवः ग्रीव गरदन
विष्णु सब व्यापक	वीरुध बेल
कल्माष हरे	इषवः बाण

ये सर्व व्यापक प्रभो आप हमारे नीचे की ओर के दिशों में विद्यमान हैं। आप हम रे राजा हैं। आप हरे रंग वाले वृक्षों और बेलोंके द्वारा हमारे प्राणों की रक्षाकरते हैं ॥आ०

ओ३म ॥ ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपति. श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योअस्तु-

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६॥

ऊर्ध्वा...ऊपर	श्वित्रः...शुद्ध
बृहस्पतिः...बड़ा स्वामी	वर्षं...मेंह

हे महान् प्रभो आप ऊपर की ओर व्यापक पवित्रात्मा हमारे स्वामी और रक्षक हैं। आप मेंह वर्षा कर हमारी ओषधी को सींचते हैं जिससे हमारा जीवन होता है। आ० अर्थ पूर्ववत्

॥ उपस्थान मन्त्राः ॥

ओ३म्॥ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

यजु० अ० ३५ मन्त्र १४ ॥

वयं...हम	देवत्रा...उत्तम गुणोंकेसाथ
तमसः...अंधकार से	सूर्यं...उत्पन्न करने वाले को
परि...परे, दूर	अगन्म...पावें
पश्यन्तः...देखने हारे	ज्योतिः...तेजरूप
उत्तरं पीछे रहने हारे को	उत्तमं... श्रेष्ठ
देवं...ईश्वर को	

जो हम से द्वेष करता है अथवा जिस से हम द्वेष करते हैं उसे आपके न्यायरूपी सामर्थ्य पर छोड़ देते हैं।

॥ ओ३म् ॥

दक्षिणादिगिन्द्रो ऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्योऽअस्तु। योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥२॥

दक्षिणादिक् दाहनी ओर	राजी ..समूह
इन्द्रः परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर	रक्षिता ..बचाने वाला
तिरश्च बिना हड्डी केपशु	पितरः ज्ञानी

हे परमेश्वर! आप हमारे दक्षिण की ओर व्याप्त हैं, आप ही हमारे राजाधिराज हैं और भुजंगादि बिन हड्डी वाले पशुओं से हमारी रक्षा करते हैं और, ज्ञानियों के द्वारा हमें ज्ञान प्रदान करते हैं। आपके अधिपत्य० आगे पूर्व के समान॥

ओ३म्॥ प्रतीचीदिग्वरुणो ऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो

नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥

प्रतीची...पश्चिम व पृष्ट भाग	पृदाकु...हड्डी वाले विष-धारी पशु
वरुणः...उत्तम स्वरूप	अन्नं...भोजन

हे सौन्दर्य के भण्डार ! आप हमारी पृष्ट की ओर हैं, हमारे महाराजा हैं, और बडे २ हड्डी वाले व विष-धारी पशुओं से हमारी रक्षा करने वाले हो, आप हमारे प्राण अन्न द्वारा रखते हैं। आपको॰आगे पूर्ववत् ॥

॥ ओ३म् ॥

उदीची दिक् सोमो ऽधिपतिः स्वजोरक्षिता अशनिरिषवः । तेभ्यो नमो ऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्योनम इषुभ्यो नम एभ्योअस्तु। यो३ ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भेदध्मः॥४

उदीची...उत्तर व बाईं ओर	स्वजः...आपो आप
सोमो...शांत स्वरूप	अशनिः...बिजुली

हे पिता आप हमारे वाम ओर में व्याप्त हैं, और ह
परम स्वामी हैं आप स्वयम्भू और हमारे रक्षक हैं,
की बिजुली द्वारा हमारे रुधिर की गति और प्राण को
करते हैं। आपको० अपने दध्मः॥

ओ३म्॥ ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो
रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपति
नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अ
योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे द

ध्रुवा नीचे की ओर	वीरुधः ..पौधे गादन
विष्णु सब व्यापक	
कल्माष हरे	इषवः प्राण

हे सर्व व्यापक प्रभो आप हमारे नीचे की ओर के
में विद्यमान हैं। आप हमारे राजा हैं। आप हरे रं
वृक्षों और बेलों के द्वारा हमारे प्राणों की रक्षा करते हैं

ओ३म्॥ ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वि
रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपति
नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अ

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६॥

ऊर्ध्वा...ऊपर	श्वित्रः...शुद्ध
बृहस्पतिः...बड़ा स्वामी	वर्षं...मेह

हे महान् प्रभो आप ऊपर की ओर व्यापक पवित्रात्मा हमारे स्वामी और रक्षक हैं। आप मेह वर्षा कर हमारी कृषी को सींचते हैं जिससे हमारा जीवन होता है। आ० अग्रे पूर्ववत्

॥ उपस्थान मन्त्राः ॥

ओ३म्॥ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥

यजु० अ० ३५ मन्त्र १४ ॥

वयं...हम	देवत्रा...उत्तम गुणोंकेसाथ
तमसः ..अंधकार से	सूर्यं...उत्पन्न करने वाले को
परि...परे, दूर	अगन्म...पावें
पश्यन्तः ..देखने हारे	ज्योतिः...तेजरूप
उत्तरं पीछे रहने हारे को	उत्तमं... श्रेष्ठ
देवं...ईश्वर को	

हे प्रभो हम जो आपको देखते हैं कि आप अज्ञान अन्धकार के परे, सुख स्वरूप, प्रलय के पश्चात् रहने वाले, दिव्यगुणों के साथ सर्वत्र विद्यमान देव, और हम को जन्म देनेवाले हैं, सो हम आप के उत्तम ज्योति स्वरूप को प्राप्त होवें ॥

ओ३म् ॥ उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ २॥ यजु० अ०३३मं०३१॥

उत् उ—अच्छा। निश्चय	वहन्ति . दिखलाती हैं
त्यं उसको	केतवः ...वरछियें
जातवेदसं · जगत् के उत्पन्न करने वाले को	दृशे . दिखाने को
	विश्वाय सबको
देवं· सब देवों के देव	सूर्य्यम् प्रकाशस्वरूप

हे जगदीश्वर, जो सकल ऐश्वर्य के उत्पादक, सर्वज्ञ और जीवात्मा के प्रकाशक है, आप की महिमा सब को दिखाने के लिये, संसार के पदार्थ पताका का काम देते हैं ॥ (जिस प्रकार भण्डियां मार्ग दिखलाती हैं) उसी प्रकार सबको स्वभाविक वस्तुयें परमेश्वर को प्रतीत कराती है ॥

ओं चित्रंदेवानामुदगादनीकं

चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं
सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
स्वाहा ॥ ३ ॥ य० अ० ७ । मं० ४२ ॥

चित्रं…अद्‌भुत	आप्राः…धारण करता है
देवानां … विद्वानों के तथा लोकों के	द्यावा…दिव्य लोक
उदगात्…प्रकाशित रहे	पृथिवी भूमि को
अनीकं…बल	अन्तरिक्षं…आकाश
मित्रस्य…मित्र के	आत्मा…अन्तरयामी
वरुणस्य…श्रेष्ठ	जगतः…जंगम का
अग्नेः…अग्नि का	तस्थुषः … स्थावर का
	स्वाहा…सत्य है

हे स्वामिन् यद्यपि इस संसार के पदार्थ आपको दर्शाते हैं परन्तु आप अद्भुत और विचित्र हैं। आप दिव्य पदार्थों के बल हैं आप सूर्य, और अग्नि के चक्षु अथवा प्रकाशक हैं। भूमि आकाश और तदन्तर गत लोक सब आपकी सामर्थ है। मैं आप चर अचर जगत के उत्पादक और अन्तर

यामी हैं। हे प्रभो हम ऐसे बलवान हों कि सदैव मन, वानी और कर्म में सत्य का ग्रहण करें॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ।
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतम्।
अदीनाः स्याम शरदः शतम्; भूयश्च
शरदः शतात् ॥४।य॰अ॰३६।२४॥

तत् वह	शरदः ऋतुमास,वर्ष
चक्षु देखने वाला	शत सौ
देवहितं विद्वानों वा लोकों के हित के लिये	जीवेम हम जीवें
पुरस्तात् पहले से	शृणुयाम हम सुनें
शुक्रम् शुद्ध	प्रब्रवाम—हम बोलें
उच्चरत् है	अदीना स्वतन्त्र
पश्येम हम देखें	स्याम—हम हों
	भूयः फिर

हे सर्व द्रष्टा चक्षु आप अनादि काल से विद्वानों और संसार के हितार्थ शुद्ध वर्तमान हैं। प्रभो हम आप को सौ

वर्ष देखें, आप की आज्ञा में सौ वर्ष जीवें, आप के आदेश को सौ वर्ष सुनें, आप के नाम को सौ वर्ष व्याख्यात करें, सौ वर्ष की आयु पर पराधीन न हों और यदि योगाभ्यास से सौ वर्ष से अधिक आयु हो तो भी इसी प्रकार विचरें ॥

गुरु मन्त्र ॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

य० अ० ३ । मं० ३५ अ० ३६ । मं० ३ ॥
ऋ० मं० ३ । सू० ६२ । मं० १० ॥ साम० उत्तर संहिता प्र० ७ मं० १० ॥

तत्...उस	धीमहि...ध्याते हैं
सवितु...उत्पादक के	धियः...बुद्धि को
वरेण्यं...उत्तम	यः...जो
भर्गः...पापनाशक रूपको	नः...हमारी
देवस्य...ईश्वर के	प्रचोदयात्...बढ़ाता है

हे प्राण पवित्रता और आनन्द के देने वाले प्रभो, ज

सर्वज्ञ और सकल जगत् के उत्पादक हैं हम आपके, उस पूजनीयतम, पाप विनाशक विज्ञान स्वरूपका ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को प्रकाशित करता है। हे पिता, आप से हमारी बुद्धि कदापि विमुख न हो, आप हमारी बुद्धियों में सदैव प्रकाशित रहें ॥

॥ समर्पण ॥

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

शम्भवाय आनन्दरूपको	मयस्कराय सुखदेनेवालेको
मयोभवाय सुखरूपको	शिवाय कल्याणरूपको
शङ्कराय भला करने हारे को	शिवतराय बहुत कल्याण करनेवालेको

हे शंभो सुख देने वाले ! कहां तक आपका यश वर्णन करें, आपको हम केवल प्रणाम करते हैं, हे शंकर आनन्दित करने वाले ! आपको हम नम्रतासे नमस्कार करते हैं। हे शिवगति देने के वाले आपको हम वारम्वार नमस्कार करते हैं॥

ओ३म्

ट्रैक्ट नम्बर ३

क्या वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को नहीं

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने रचा और

प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी ने

महाविद्यालय मशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रैक्टसोसाइटी

(दफ्तर) पुलिस के सामने

बाजार हरिद्वार.

४००० प्रति] [मूल्य ३ पाई.

ओ३म्

क्या वेदों के पढने का अधिकार सबको नहीं-

यथेमाम्वाचंकल्याणी मा वदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्रायचार्यायच स्वाय चारणाय ॥ यजु० अ० २६ मं० २

(अर्थ) इस वेद मन्त्र में परमात्मा जीवों को इस बात का उपदेश देते हैं कि जिस प्रकार में संपूर्ण मनुष्यों के वास्ते कल्याण के देनेवाली अर्थात् मुक्ति सुख के देनेवाली ऋग वेदादि चारोंवेदों की शिक्षा का उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो, इस वेद मन्त्र से तो स्पष्ट शब्दों में प्रकट है कि मनुष्यों को वेद पढाओ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, और स्त्री आदिक सर्व प्रकार के मनुष्यों के वास्ते अस्तुः मन्त्र तो सर्व मनुष्यों को वैसाही अधिकार बतलता है जैसा कि प्रत्येक मनुष्य पर-

माता के दिए हुये गर्भ से देखने का अधिकार रखता है-परन्तु प्रायः मनुष्य यहाँ कहते हैं कि केवल द्विजों को ही वेदों के पढ़ने का अधिकार है शूद्रों को नहीं क्यों कि शूद्र के वास्ते यज्ञोप वीत की आज्ञा नहीं है और बिना यज्ञोपवीत के मन्त्र के पढ़ने का अधिकार नहीं जैसा कि स्वामी दयानन्द ने भी गृह्य सूत्रों के प्रमाण से लिखा है-

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत ॥ १ ॥ गर्भाष्टमेवा ॥ २ ॥ एकादशे क्षत्रियम ॥ ३ ॥ द्वादशे वैश्यम । ४ ॥ आषोडशाद् ब्राह्मणस्य नातीत काल आद्वाविंशत् क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अनउर्ध्वपतित सावित्रिका भवन्ति-

(अर्थ) जिस दिन जन्म हुआ अथवा जिस दिवस गर्भ रहा हो उस से आठवें वर्ष में ब्राह्मण के और जन्म वा गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में क्षत्री के और जन्म अथवा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के पुत्र का यज्ञोपवीत करें और ब्राह्मण के सोलह क्षत्री के बाईस और वैश्य के पुत्र को चौबीस वर्ष पर्यंत यज्ञोपवीत चाहिये यदि पूर्वोक्त समय के अभ्यन्तर यज्ञोपवीत नहीं लेवें तो इनको गायत्री और वेदों के पढ़ने का अधिकारी नहीं समझा जावे-

(उत्तर) यहां तो स्पष्ट है कि जो ब्राह्मण बनने का अधिकारी लड़का हो उसका संस्कार आठवें वर्ष में होना चाहिये क्यों कि इस दशा में उसको पढ़ने के वास्ते अठारह वर्ष मिल,

जावेंगे अष्टादश वर्ष की शिक्षा के बिना ब्राह्मण होना कठिन है, यदि कोई अधिक से अधिक बुद्धिमान् भी हो तो वह १६ वर्ष की आयु से पढना आरम्भ करके प्रत्येक वर्ष में दो २ वर्ष की शिक्षा पाकर अर्थात् दो २ कक्षा पास करके नववर्ष में भी हो सकता है परन्तु इस से कम समय में ब्राह्मण होना असंभव है और क्षत्री बालक को ग्यारह वर्ष से पच्चीस वर्ष पर्यंत चौदह वर्ष शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये इस के बिना क्षत्री बनना कठिन है परन्तु बहुत बलवान बालक जन्म से ही जिसके अच्छे संस्कार हो तो तीन वर्ष तक शिक्षा पाकर भी क्षत्री बनसकता है क्यों कि क्षत्री के कार्य में विद्या की अपेक्षा बलकी भी आवश्यकता है और वैश्य पद के अधिकारी को बारह वर्ष से पच्चीस वर्ष पर्यन्त तेरह वर्ष शिक्षा पानी चाहिये क्यों कि वैश्य का काम परोक्षकी अपेक्षा प्रत्यक्ष के अधिक आश्रय है, बुद्धिमान मनुष्य एक वर्ष में वैश्य की शिक्षा प्राप्त कर सकता है—क्यों कि इस के पश्चात् ब्रह्मचर्यावस्था समाप्त होजाती है—निदान जो विद्यार्थी इस अवस्था तक विद्या पढनी आरम्भ नहीं करें वह शूद्र रहजाता है—

(प्रश्न) स्वामी जी ने तो ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य का बालक लिखा है तुम ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य पद का अधिकारी बालक कहां से निकालते हो—

(उत्तर) सूत्र के पदों का अर्थ तो यह है कि आठवें वर्ष ब्राह्मण का उपनयन होवे—परन्तु उपनयन अर्थात् यज्ञोपवीत

संस्कार से पूर्व किसी की द्विज संज्ञा ही नहीं होती—क्योंकि जिसके दो जन्म हों उसको द्विज कहते हैं, पहला जन्म तो माता पिता के यहां और दूसरा गुरु पिता और विद्या माता के कारण से होता है परन्तु जो विद्यारूपी माता के गर्भ में नहीं गया वह द्विज किस प्रकार कहला सकता है और जो द्विज ही नहीं बना तो वह ब्राह्मण किस प्रकार होसक्ता है स्वामी जी को यह अर्थ करना पड़ा कि ब्राह्मण का बालक परन्तु जो दोष उस दशा में रहता है वह इस दशा में भी रहता है निर्गुण ब्राह्मणके बालकसे ब्राह्मण पदका अधिकारी बालक है स्वामी जी के अभिप्राय को प्रकट करता है और स्वामी जी ने जो मनु का प्रमाण दिया है यह इसको स्पष्ट कर देता है—

ब्रह्म वर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनाष्टमे ॥

(*स्वामी जी का अर्थ*) यह मनुस्मृति का वचन है कि जिस को शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक भी पढ़ने में समर्थ हो तो ब्राह्मण के बालक का जन्म या गर्भ से पांचवें क्षत्री का छठे और वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करें, यह बात तब ही होसक्ती है जब कि उनके माता पिता का ब्रह्मचर्य पूर्ण होनेपर विवाह

हुआ हो उन्हीं के लड़के इस प्रकार की इच्छा प्रकट करके शीघ्र विद्या को प्राप्त करनेवाले होसक्ते हैं परन्तु हमारे बहुत से मित्र यह प्रश्न करेंगे कि श्लोक के शब्दों में भी ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य का ही उपनयन प्रकट होता है शूद्र की सन्तान के वास्ते कोई समय नियत नहीं है परन्तु स्मरण रहे कि ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य के अधिकारी को उपनयन संस्कार की आवश्यकता होती है शूद्र के बनने के वास्ते उपनयन की आवश्यकता नहीं—अर्थात् जो मनुष्य पर्य्यान्त वर्ष तक ब्रह्मचर्य न रखकर और वैदिक शिक्षा न पाकर उपनयन से खाली रहते हैं वही शूद्र हैं और उपनयन संस्कार से पूर्व सब ही शूद्र होते हैं— क्योंकि द्विज बनानेवाला वेदारम्भ संस्कार है जो उपनयन के पश्चात् होता है यह तो सब ही को ज्ञात है कि वरण गुण कर्म स्वभाव से होता है न कि जन्म से जैसा कि गीता में लिखा है कि तीनों वरणों की उत्पत्ति गुण कर्म से होती है यदि उत्पत्ति से वरण होवें—तो आन्हिक सूत्रावली में जहां ब्राह्मणादि वरणों के नित्य कर्म लिखे हैं उनको इस बात की आवश्यकता नहीं होती कि उनके लक्षण लिखते—जो प्रत्येक वरण के पृथक् २ दिखलाए हैं जैसे ब्राह्मणों के यह लक्षण लिखे हैं—

शौचमास्तिक्यमभ्यासो वेदेषु गुरुपूजनम्।
प्रियातिथित्वमिज्याच ब्रह्मकायस्यलक्षणम्॥

(अर्थ) शौच अर्थात् शुद्ध रहना (आस्तिक) ईश्वर का पूर्ण विश्वासी हो वेदों का अभ्यास नित्य करता हो-गुरु का पूजन करना सर्वदा सब से प्रीति पूर्वक बोलना—अतिथि का सत्कार करना अग्निहोत्र करना-जिसका यह स्वभाव हो—अर्थात् जो किसी दिखावे वा बनावट के बिना इनका अभ्यासी हो तो वह ब्राह्मण है आगे पुनः लिखते हैं कि—

शान्ता सन्तासुशीलाश्च सर्वभूतहितेरता ।
क्रोधंकर्तुंनजानान्ति एतद् ब्राह्मणलक्षणम्

(अर्थ) शान्त होने से जिस की आशा दमन होगई है इसी वास्ते उस को किसी से राग द्वेष नरहा और जिस के चाल चलन वेदानुसार है जिस ने अपने शरीर को सुशीलता (इस लोक) में शुद्ध किया है और सम्पूर्ण प्राणियों से प्रेम करना किसी समय भी स्वार्थ जिसके मनमें नहीं आवे क्रोध करना जानताही न हो यह ब्राह्मण के चिन्ह हैं आगे व्यास जी और भी कहते हैं

संध्यो पासन शीलश्चसौम्यचित्तोदृढव्रतः
समःस्वेषुपरेषुच एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ५

(अर्थ) जो सन्ध्या अर्थात् परमात्मा की उपासना और ध्यान के करने वाला और जिस का हृदय नर्म होने के कारण

दूसरे को दुःख सहन न करसके दृढव्रत अर्थात् जो कुछ काम करना चाहें उस के करने में चाहे जितने क्लेश क्यों न हों परन्तु करने से न रुकना और जो अपने और पराये साथ एकसा प्रेम करता है उसे ब्राह्मण कहते हैं इस ही प्रकार से और भी लक्षण बतलाए हैं जिन के लिये इस लघु टेक्ट में अवकाश नहींहै यदिशास्त्रकार उत्पत्ति से वर्ण मानतेतो लिख देते कि जो ब्राह्मण के रजवीर्य से उत्पन्न हो वह ब्राह्मण है ॥

(प्र०) जब कि मनु ने लिखा है कि जो ब्रह्म तेज की इच्छा रखने वाला हो उस का पांचवें वर्ष में उपनयन किया जावे तो शूद्र का उपनयन किस प्रकार हो सकता है ॥

(उत्तर) क्यों कि पांचवें वर्ष की आयु में कोई ब्राह्मण हो नहीं सक्ता अतः यह शब्द अनर्थक है कि ब्राह्मण का पांचवें वर्ष में उपनयन किया जावे क्यों कि उपनयन से पूर्व द्विज संज्ञा होनहीं और ब्राह्मण सब से उत्तम द्विज को कहते द्वितिय उस में यह अन्योनाश्रय दोष भी है कि द्विज हो तो उसका उपनयन संस्कार और वेदारम्भ संस्कार हो और ठीकनहीं संस्कार हो तो द्विज बने निदान ऐसा विचार दूषित होने से

(प्रश्न) जब कि स्वामी जीने ब्राह्मण के बालक का उपनयन पांचवें वर्ष में लिखा है पुनः आप इस के विरुद्ध किस प्रकार कहते हो ॥

(उत्तर) ब्राह्मण के बालक का यह अभिप्राय किस प्रकार निकाल लिया कि ब्राह्मण के वीर्य्य से उत्पन्न हुआ बालक किन्तु उसका अर्थ यही वेदानुकूल है कि ब्राह्मण पद का अधिकारी बालक वरन वेद मंत्र के विरुद्ध होने से सारे सूत्र अप्रमाण हो जावेंगे ॥

[प्रश्न] जिस प्रकार पूर्व आश्रम अर्थात् विद्यार्थी पने में जो पिता की जीविका [पेशा] है वही जीविका विद्यार्थी की भी मानी जाती है जिस प्रकार एक कृषान का बालक स्कूल में पढ़ने के वास्ते जाता है उस उम्र की जीविका पूछते हैं तो जमींदारी ही बतलाता है यदि पूर्व आश्रम के वर्ण को मानकर संस्कार करा दिया जावे तो क्या दोष होगा ॥

[उत्तर] इस दशा में प्रथम तो यह ही दोष होगा कि गुरु के यहां कुछ ब्रह्मचारी जिन के माता पिता मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं और अनाथ हो कर पहुंचे उन के जानने वाला वहां कोई नहीं है और वह दशों बालक द्विजों के हैं अब जो गुरु उन से पूछता है तो वह बतला नहीं सक्ते ॥
अब यदि न बतलाने के कारण उनका संस्कार न किया जावे, तो द्विजों की सन्तान को पतित करने का दोष गुरु को लगेगा यदि संस्कार किया जावे तो किस प्रकार–क्यों कि वह जानते नहीं कि कौन किस वर्ण का लड़का है–यदि किया जावे तो उनकी बुद्धि का अनुमान करके ही–निदान स्वामीजी जी के ब्राह्मण के बालक का अभिप्राय यही जानना चाहिये कि ब्राह्मण

(प्रश्न) जब कि स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा है कि जो शूद्र कुल और गुण युक्त हो उसको मन्त्र संहिता छोड़कर बिना उपनयन किए पढ़ाए, ऐसा कई एक आचार्य मानते हैं तो इससे शूद्र को वेद पढ़ने के अधिकार का न होना तो सिद्ध ही है—

(उत्तर) यहां शूद्र का बालक तो लिखा नहीं जिस से आप का अभिप्राय सिद्ध हो, किन्तु दिखलाया यह है कि जिसका चौबीस वर्ष तक संस्कार तो हुवा नहीं कि जिससे वह द्विजों में मिलसके और वह पढ़ना चाहता है तो आयु के व्यतीत हो जाने से वह उपनयन का अधिकारी नहीं रहा और बिना उपनयन के मन्त्र पढ़ नहीं सकता निदान शास्त्र पढ़ाए—

(प्रश्न) जिस प्रकार सूर्य का अधिकार सबको है ऐसे ही वेद का अधिकार बताया था परन्तु अब चौबीस वर्ष तक जिस का संस्कार न हो उसको अधिकार नहीं दिया अतः वेद का अधिकार सबको नहीं।

(उत्तर) क्या सूर्य का अधिकार सबको है, इसका यह अभिप्राय है कि अन्धे को सूर्य का अधिकार है अन्धा भी सूर्य से देख सक्ता है, अथवा चक्षुः बंद करके चलने वालों को सूर्य दिखा सक्ता है नहीं इसका अभिप्राय यह है कि देशकाल और जाति भेद किए बिना जिसकी बुद्धि वेद के पढ़ने योग्य है जिसके संस्कार यथा योग्य किएगए हों जिनको वेदों की पढ़ने की इच्छा हो उन सबको वेदों के पढ़ने का अधिकार है अस्तुः

अन्धा सूर्य के प्रकाश में देख नहीं सका परन्तु यह कोई नहीं कहता कि सूर्य का अधिकार उसको नहीं. निदान जो मनुष्य अपनी सन्तान को वेद पढ़ाना चाहे तो उसका धर्म है कि वह उनके नियमानुसार संस्कार कराए, ताकि वह वेदों के पढ़ने योग्य हों, जिस के संस्कार नहीं वह संस्कार शून्य, शूद्र है अर्थात् वह चक्षु बन्दकरके सूर्य के सामने आता है. ऐसे मनुष्य को सूर्य किसी प्रकार भी नहीं दिखा सकता, इस में सूर्य का दोष नहीं, दोष उसी आंख बन्द करके चलने वाले का है-ऐसे ही वेद का अधिकार तो सबको है, परन्तु जिनके माता पिता संस्कार न कराएँ उस में दोष उनके माता पिता का है, न कि वेद का-

(प्रश्न) क्या यह अन्याय नहीं कि संस्कार तो पिता ने नहीं कराया-और वेदों की शिक्षा से पुत्र को रोका जावे-क्योंकि इस दशा में दूसरे के कर्म का फल दूसरे को मिलता है जिसमें न्याय दूर होजाता है—

(उत्तर) यह प्रत्यक्ष बात है कि यदि किसी के माता पिता उसकी आँख फोड़दें तो वह सूर्य के प्रकाश से रुकजाता है सूर्य से तो नहीं देखेगा जिसकी आँख ठीक हों चाहे उसने नेत्रों को स्वयं फोड़दिया हो वा माता पिता ने दोनों दशाओं में दर्शन से रुकजाता है—

निदान वेदों की शिक्षा का समय बाल्यावस्था ही से आरम्भ होता है यदि उसी समय संस्कार कराकर वेदों की शिक्षा

आरम्भ करदी जावे तो उस मनुष्य को वेदों का अधिकार है यदि माता पिता उस मनुष्य को वेदों का अधिकार दें यदि माता पिता उस काल को अपनी मूर्खता के कारण खो बैठें और बालक का संस्कार न करा और उस के शिक्षा के काल को मुफ्त खोये, तो यह दोष उन माता पिता का है अस्तुः ॥

इस से यह अभिप्राय निकालना ठीक नहीं कि वेदों के पढने का अधिकार सब को नहीं किन्तु वेद के पढने का अधिकार सबको है परन्तु नियम यह है कि यथा काल संस्कार हुये हो अतः वेदों ने तो शूद्रादि सब ही को अधिकार दिया है। परन्तु शिक्षा के समय को टालने वाले पितर यदि अयोग्य बनावे यह उसका दोष है ऋषियों के किसी नियम में दोष नहीं ॥

प्रश्न–यदि बाल्यावस्था में संस्कार न हुवे तो बडी आयु में संस्कार कराकर पढ लेने में क्या दोष है ?

उत्तर–जिस प्रकार विना ऋतु के कृषि बोने पर कृषि ठीक उत्पन्न नहींहोती इसी प्रकार शिक्षा समय के खोदेनेसे बडी आयु में इस योग्य नहीं रहता कि वेदों की गूढ बातों को समझ सके

निदान शिक्षा समय में ही ठीक प्रकार से पढ सकता है। नियम के टूट जाने से मनुष्यों ने डरकर शिक्षा को प्राप्त नहीं नहीं किया ॥

निदान जब कि वेद मन्त्र ने सब को वेद पढने का अधिकार दिया है और वेद सब स्मृति पूर्ण शास्त्र से अधिक माना है और वेद के विरुद्ध होने से कोई पुस्तक भी प्रमाण नहीं रहती अब यह सिद्ध हुआ कि वेद पढने का अधिकार सब को है जो अपनी मूर्खता से समय खो बैठे तो उस का अपना दोष है ॥

॥ ओ३म् शम् ॥

आपका शुभ चिन्तक

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

ओ३म्

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गौशाला; इत्यादि उपस्थित हैं ॥

ओ३म्

वेदों की आवश्यकता

ट्रैक्ट नं० १

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती कृत

जिसको

प्रबन्धकर्त्ता वैदिकधर्मप्रचारक मण्डली

ने

वैदिकयन्त्रालय

अजमेर में

छपवा कर प्रकाशित किया

प्रथमवार ५०००	जुलाई १९०२	मूल्य)॥

वेदों की आवश्यकता ।

मनुष्य जब संसार के पदार्थों को सूक्ष्मदृष्टि से विचार करके देखता है तब उस को निश्चय हो जाता है कि संसार में जितने रोग हैं उन सब की औषधि है और जितनी औषधि हैं वह किसी न किसी रोग के लिये उपयोगी हैं जब तक मनुष्य इसबात को न जानले कि इस समय इस रोग के कारण औषधि की आवश्यका है तब तक उसकी प्रवृत्ति उस औषधि के सम्पादन करने में नहीं होती और जब तक मनुष्य यह न जानले कि मुझे अमुक रोग है तब तक वह उसकी निवृत्ति के उपायों को नहीं विचारता यद्यपि वह औषधि उसके पासही पड़ी हो तो भी आवश्यका के न जानने से वह उसको ग्रहण नहीं करता इससे विचारशील का काम है कि प्रथम रोग अर्थात् वस्तु की आवश्यकता पश्चात् वस्तु के गुण तदनन्तर उससे रोग की निवृत्ति अच्छे प्रकार से समझाकर वस्तु के देने की चेष्टा करें, नहीं तो वस्तु के दान से अभीष्ट फल सिद्धि न होगी इसकारण हम प्रथम मनुष्यों की आवश्यकता को प्रगट करेंगे ।

मनुष्यों का रोग ।

जब हम संसार में देखते हैं कि अन्न संसार के जीवों का प्राणस्वरूप है और प्राचीन विद्वानों ने भी उसको मनुष्यों

का प्राण माना है "अन्नं वै प्राणः" स्मृति वाक्य से तो हम निश्चय ही करते हैं कि अन्न मनुष्यों का प्राण है परन्तु जब कोई मनुष्य कच्चा अन्न खा जाता है तो बहुधा अपचि रोग हो जाता है जब अन्न अधिक खा जाता है तो विशूचिका आदि रोगों से प्राणों का नाशक प्रतीत होने लगता है उस समय उपरोक्त सिद्धांन्त से विमुख वृत्ति हो जाती है जब हम सुनते हैं "आज्यं वै बलम,आज्यं वै आयुःआज्यं वै प्राणः" अर्थात् घृत ही जीवों को बलदायक है। घृतही जीवों की आयु है घृत ही जीवों का प्राण है तो घृत का सेवन आवश्यक प्रतीत होने लगता है परन्तु जब कोई ज्वर पीड़ित मनुष्य घृत का सेवन करता है उस समय घृत उसे बलवान् नहीं बनाता किन्तु विषमज्वर अर्थात् (तपेदिक्) करके उसके बल का नाशक, आयु का नाशक और प्राणों का नाशक हो जाता है वा घृत खा कर पानी पीलो तो (काशरोग) अर्थात् खांसी उत्पन्न हो जाती है। इसको देखकर घृत खाने में अश्रद्धा हो जाती है। अब लीजिये विष अर्थात् संखिया जो मनुष्यों को प्राणनाशक प्रतीत होता है जिसको प्राणनाशक समझ कर राज्य ने भी उसका बेचना बंद कर दिया है परन्तु जब वही संखिया वैद्यकशास्त्र की रीति से शुद्ध कर के खाया जाता है तो बड़े२ प्राणनाशक रोगों को नाश करके जीवों को अमृत के तुल्य गुणकारी प्रतीत होने लगता है पाठकगण ! उक्त दृष्टान्तों से निश्चय हो जाता है कि कोई भी पदार्थ इस संसार में जीव के लिये उपकारक नहीं और न हानिकारक है किन्तु पदार्थों

को तत्वज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञान कर उसके गुण स्वभाव क्रिया को जानकर उस का वरताव करना लाभदायक है और इससे विरुद्ध मिथ्याज्ञान के आश्रय उसका ग्रहण हानिकारक है।

प्रियपाठको ! जब हमें किसी अंधकारमय स्थान में आने का अवसर मिलता है तो भयदायक वस्तु के न होने पर भी चित्त का भय दूर नहीं होता जब प्रकाश में सिंह सर्पादि भयानक जीवों को देखते हैं तो उनकी अवस्था को जानकर हमारा भय बहुत ही न्यून हो जाता है इससे भी निश्चय होता है कि मनुष्य को अज्ञान ही भयकारक है अज्ञान के नाश से मनुष्य का भय भी नाश हो जाता है बहुधा हम देखते हैं कि एक मनुष्य बलिष्ट पशुओं की मण्डली को एक सोटा हाथ में लिये अपने आधीन करके जिधर चाहता है उधर ले जाता है परन्तु वह उन मनुष्यों को उस सोटे से अपने आधीन नहीं कर सका यह सब बातें प्रत्यक्ष जतला रहीं हैं कि ज्ञान का न होना बड़ी हानि का कारण है मनुष्यों को इसी ने परतंत्र कर रक्खा है यही मनुष्यों के दुःखों का आधार है पाठकगण ! आप यह भी जानते हैं कि जीव अल्पज्ञ है और प्रकृति विभु है तो प्रकृति का तत्व जीव को पूर्णतया होना असम्भव है इससे जीव कभी सुखी नहीं हो सकेगा और प्राचीन शास्त्रों ने भी इस बात को प्रतिपादन किया है कि मनुष्य मिथ्याज्ञान से बद्ध होता है जैसा महात्मा महामुनि कपिल जी ने अपने सांख्य शास्त्र में दिखलाया है।

"बंधो विपर्ययात् ।"

अर्थ-विपर्य्यय अर्थात् विपरीत ज्ञान ही बंध का हेतु अ-र्थात् कारण है क्योंकि प्रकृति के अविवेक से जब जीव को प्राकृत पदार्थों में यह भ्रम उत्पन्न होजाता है कि यह पदार्थ मेरी आत्मा के अनुकूल अर्थात् सुखकारक है और यह पदार्थ प्रतिकूल अर्थात् दुःखकारक है तो जिन पदार्थों को आत्मा के अनुकूल समझा है उनके ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न होती है और उस पदार्थ के उपादान करने अर्थात् प्राप्त करने में मनुष्य यत्न करता है वह यत्न से उत्पन्न हुआ कर्म धर्मा-धर्म रूप फल को उत्पन्न करता है और उस फल को भोगने के वास्ते जन्म मरण अर्थात् शरीर के संयोग वियोग को प्राप्त होता रहता है और इस रोग की औषधि तत्वज्ञान के विना दूसरी नहीं जिस प्रकार रज्जु में सर्प की भ्रांति से जो भय उत्पन्न होता है उसकी निवृत्ति का उपाय विना प्रकाश में रज्जु को रज्जु जाने दूसरा नहीं और महर्षि पतञ्जलि ने भी अपने योगशास्त्र में लिखा है ।

"अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः"

अविद्या अर्थात् जिससे पदार्थ के तत्वस्वरूप को न जान कर भ्रम से अन्य में अन्य निश्चय करना इत्यादि और भी सब महात्माओं की सम्मति में मिथ्याज्ञान ही मनुष्यों का रोग है जिसके नाश से मनुष्य शांतिसुख को लाभ कर

सकता है और इस रोग की औषधि सिवाय आत्मानात्मविवेचन के दूसरी नहीं क्योंकि जब तक जीव अपने स्वरूप और प्रकृति के स्वरूप और स्वभाव को न जानले और अपने अभीष्ट आनन्द के अधिकरण अर्थात् आश्रय को न समझले तबतक जीव के दुःख की निवृत्ति होना असम्भव है।

प्रियपाठको! हमारे महात्मा योगीश्वरों ने भी इसकी पुष्ट किया है।

"ज्ञानात् मुक्तिः।"

अर्थात् मुक्ति नाम त्रिविध दुःखनिवृत्ति ज्ञान ही से होती है और महामुनि गौतम जी ने अपने शास्त्र के आरम्भ में ही सिद्धांत कर दिया है।

"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टांतसिद्धांतावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानांतत्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः"
न्या० अ० १ पा० १ सू० १ ॥

अर्थ–प्रमाण जिससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान होता है। प्रमेय, जिसका ज्ञान प्रमाण से हो। संशय, जहां सामान्य ज्ञान हो परन्तु प्रमाण के अभाव से निश्चित ज्ञान न हो। प्रयोजन, जिस अर्थ की इच्छा को धारण करके कार्य्य में प्रवृत्ति होती है।

दृष्टान्त, जिस में लौकिक और परीक्षकों की बुद्धि समान हो। सिद्धान्त, जो प्रतिपक्षी के साथ वाद करके अन्तिम व्यवस्था ठहरे इत्यादि और सब सोलह पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है क्योंकि जब प्रमाणादि द्वारा जीव को यह निश्चय होजाता है कि अमुक पदार्थ मेरे आत्मा के अनुकूल अमुक प्रतिकूल है तो सत्य कार्य्यों में प्रवृत्ति होती है जिसके भोगने के लिये जन्म की आवश्यकता नहीं होती इसी प्रकार जब जीव अपने प्रकृति तथा ईश्वर के गुणों का ठीक ठीक निश्चय कर लेता है तब वह हिताहित को ठीक साधन कर लेता है जिस प्रकार आजकल जुगराफिये और नकशों के द्वारा हमको हरएक नगर देश समुद्र झीलादि का यथार्थज्ञान उपकारदृष्टि से हमारी न्यायशील सरकार ने विनाश्रय घर बैठे सिखला दिया है और यह भी प्रगट कर दिया कि अमुक नगर में यह वस्तु उत्पन्न होती वहां के लोगों का यह मत है उन की यह रीति है जब मनुष्य इस प्रकार जान लेता है कि अमुक देशवासियों का यह धर्म्म है ऐसा स्वभाव है ऐसा धन है, ऐसे कारीगर हैं उनका ऐसा चाल चलन है इत्यादि बातों को जान कर उसको अपने अभीष्ट की सिद्धि का ज्ञान जिस स्थल से प्रतीत होता है वह वहीं जाता है अन्यथा व्यर्थ भ्रमण करके अपनी आयु का नाश नहीं करता इसी प्रकार उस परमात्मा की दयालुता से प्रकृति का पूरा नकशा जिसके जानने से प्रकृति के पूरे सिद्धान्त को जानकर अपने आत्मा के अनुकूल वा प्रतिकूल न जानकर

हेय उपादेय रूप वृत्ति को इसमें न फंसा कर अपने अभीष्ट आनन्द के लिये यत्न करता है और यह पूर्ण विवेकी ज्ञान के आश्रय अभीष्ट का प्राप्त करके अतीव सुख को प्राप्त होता।

क्योंकि यह तो सामान्य पुरुष भी नहीं चाहता कि विना प्रयोजन के पक्षपात करके अपने नाम को कलङ्कित करे तो ईश्वर में यह सन्देह ही नहीं हो सकता प्यारे पाठको! संसार में कर्मों के फल के विना कोई भी सुखी दुखी नहीं होता और जब तक कर्मों का विधि निषेध निश्चय न होजाय तब तक उन कर्मों में प्रीति नहीं होती इससे भी ज्ञात होता है कि कर्मों की विधि निषेध का ज्ञान ईश्वर ने जीवों को दिया है।

प्यारे परीक्षकजनो! यह तो आप ठीक रीति से समझते हैं कि जो मनुष्य जिस वस्तु वा कौशल को बनाता है जब तक उसको यथार्थ बरतने की विधि मुख से वा लख से न बतलादे तब तक उसका यथार्थ बर्ताव किसी को भी नहीं आता और यह भी हम देखते हैं कि हमारे सामने जो घड़ियें अमरीका या यूरुप देश से आती हैं जब तक उसको कुंजी लगाने का समय वा विधि और सूइयों के घटाने बढ़ाने के नियम तेज और धीमा करने का विचार हमको न विदित होवे तब तक उस घड़ी से हम यथार्थ प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते और न हम इस वस्तु के विगड़ने से दोषी ठहराये जा सक्ते हैं हम जगत् में देखते हैं कि जहां हम विना देखे थोड़ी दूर भी चले

वहीं ठोकर खाई जो जतलाती हैं कि ईश्वर ने जो तुम्हें आंखें देने से देखकर चलने की आज्ञा दी थी उसको भङ्ग करने का यह फल है।

प्यारे पाठको! इसीप्रकार जब ईश्वर के दिये हुये इन्द्रियों के नियमों को तोड़कर प्रत्यक्ष में दुःख उठाते हैं इससे यह अनुमान सिद्ध है कि वर्त्तमान दुःख भी पूर्व में जो ईश्वर आज्ञा उल्लंघन की हैं उनका फल है।

महाशयगण! जब यह निश्चय होगया कि दुःख ईश्वर आज्ञा उल्लंघन का फल है तो यह बात छिपी नहीं रहती कि ईश्वर ने हमें क्या आज्ञा दी है अब ईश्वर आज्ञा को हम उसके दिये नियमों तथा विधि निषेध रूपी वेदों से पाते हैं।

प्यारे पाठको! जब निश्चय हो चुका तो हम उन पुस्तकों की जिनको संसार में ईश्वर आज्ञा मानते हैं परीक्षा करने के लिये उद्योग करते हैं।

प्यारेपाठको! वेदों को छोड़कर बाकी ४ पुस्तकें तौरेत ज़बूर इंजील कुरान को अधिकांश लोग ईश्वर आज्ञा के नाम से पुकारते हैं।

पहिली पुस्तक तौरेत तो मूसा के समय में उतरी विचार यह उत्पन्न होगा कि मूसा से पहिले लोगों को विधि निषेध

का ज्ञान किसप्रकार से होता था और आदम से लेकर मूसा तक ईश्वर आज्ञा संसार में थी या नहीं और मूसा से पहिले संसार में कौन बात न थी जिसके लिये ईश्वरीय पुस्तक की आवश्यकता थी जिसको तौरेत ने पूरा किया इसका उत्तर यथार्थ देना अति कठिन है।

प्यारे पाठको! यदि दुर्जनतोष न्याय से यह भी मान लें कि तौरेत की आवश्यकता थी तो तौरेत में क्या न्यूनता थी? जिसको पूरा करने के लिये ज़बूर की आवश्यकता हुई और तौरेत के बनाने वाले को उस आवश्यकता का ज्ञान पूर्व था या नहीं यदि था तो पहिले क्यों न लिया और आदम से लेकर दाऊद तक मनुष्यों का जीवन अधूरेपन में गया और उनको ईश्वर की यथार्थ आज्ञाओं को न पालन से वंचित रह कर जो दुःख उठाना पड़ा इसका दोष किसपर आवेगा? तौरेत के बनाने वाले पर।

प्यारे पाठको! संसार में दो प्रकार का ज्ञान प्रतीत होता है एक तो सामान्य ज्ञान दूसरा विशेष ज्ञान। सामान्य ज्ञान तो जीव के स्वभाव से ही रहता है क्योंकि जीव अल्पज्ञ है अर्थात् नियमित ज्ञान स्वभाव से समस्त जीवों में रहता है परन्तु विशेष ज्ञान बिना किसी निमित्त से नहीं हो सकता। खाना सोना रोना इत्यादिक जो कार्य्य पशु पक्षी सर्पादि सब योनियों में रहता है यह स्वाभाविक है परन्तु हरएक योनि में जो विशेष ज्ञान है वह किसी निमित्त अर्थात् दूसरे के सिखाने से प्राप्त होता है।

मित्रवर्गो! जब हम समस्त जीवों से मनुष्यों की तुलना करते हैं उस समय समस्त जीवों में भोगशक्ति को पाते हैं जैसे-गौ, भैंस अश्वादिक पशु-तथा हंसादिकपक्षी वा सर्पादिक तिर्य्यक् जीव, अन्नादि पदार्थों को भोगते हैं परन्तु उनको अन्नादिक पदार्थों की वृद्धि तथा उत्पत्ति करने का ज्ञान नहीं प्रतीत होता। इससे ज्ञात होता है कि जीव स्वभाव से वर्तमान अवस्था का ज्ञान रखता है किन्तु जब हम मनुष्यों में कर्तृत्व शक्ति अर्थात् कर्मों के करने की सामर्थ्य को विचारदृष्टि से विचारते हैं तो यह सामर्थ अन्य जीवों में न पाकर हमें विश्वास होता है कि यह शक्ति किसी निमित्त से उत्पन्न हुई है और जब हम अशिक्षित पुरुषों को देखते हैं तो वे भी कर्तृत्व शक्ति से शून्य ही प्रतीत होते हैं इससे स्पष्ट ज्ञान होता है कि करने की सामर्थ्य प्राप्ति मनुष्यों को शिक्षा से हुई है अब यह विचार उत्पन्न होता है कि मनुष्यों को शिक्षा किससे प्राप्त हुई बहुत लोग तो कहेंगे कि शिक्षा जीवों के परस्पर मेल से उत्पन्न होती है क्योंकि बहुतों की अल्पज्ञता या सामान्य ज्ञान मिल कर बहुज्ञता वा विशेष ज्ञान उत्पन्न होजाता है परन्तु तत्वदृष्टि के विचार से यह मिथ्या प्रतीत होता है जैसे दियासलाई में सामान्य अग्नि है और रगड़ने से विशेषाग्नि प्रगट होती है तो रगड़ना निमित्त ही विशेषाग्नि का उत्पादक प्रतीत होता है और डिब्बी में सौ दियासलाइयों के योग से विशेषाग्नि का उत्पन्न करने वाला निमित्त कारण नहीं जब एक सलाई में विशेषाग्नि प्रगट होजाती है तो वह बहुतसी वस्तुओं को

यह शक्ति दे सकती है इसी प्रकार जब तक जीव को शिक्षा प्राप्त न होगी तबतक उसमें यह सामर्थ्य न होगी।

प्रियपाठको ! कुछ लोग यह कहते हैं कि जीवात्मा नित्य प्रति उन्नति करता है इससे काल पाकर सर्वज्ञ हो जायगा परन्तु उनका यह सिद्धान्त ठीक नहीं क्योंकि जीवात्मा ज्ञान विषय कभी भी बिना निमित्त उन्नति नहीं कर सकता इस में हेतु यह है कि कोई वस्तु भी उन्नति नहीं करती किंतु अपने उपयोगी अवयवों को प्रकृति से ग्रहण करती है उसको मूढ पुरुष उसकी उन्नति मानता है किन्तु गुणों के उचित सहकारी निमित्त को पाकर अधिक हो जाता है परन्तु देश कालादिक तथा प्रकृति यह सब ज्ञान से शून्य है इनसे सर्वज्ञता का मिलना असम्भव है बहुतसे भाई यहां पर यह शंका करेंगे [illegible]

ज्ञान [illegible]

यह [illegible]

में प्रत्यक्ष पदार्थों के देखने की शक्ति अधिकांश हो जाती है इससे रूप ज्ञान तो होगया परन्तु विशेष ज्ञान का अभाव ही रहा और यह शक्ति सब जीवों में स्वतः उपस्थित है इसको तुम विशेष ज्ञान नहीं कहसकते क्योंकि संसार के पशु पक्षी रूप ज्ञान को प्राप्त हैं किन्तु प्रत्यक्ष से अतिरिक्त अनुमानादि जन्य ज्ञान जिससे कार्य्य को देखकर कारण का बोध और लिंग को देखकर लिंगी का बोध होता तथा नित्य के व्यवहारों

से अनुभव विना शिक्षा के प्राप्त नहीं होता इसलिये अवश्य अनुमान होता है कि यह शिक्षा मनुष्य को कहीं से प्राप्त हुई है।

प्रियमित्रो! यह तो आप स्वीकार करते हैं कि जबतक आप किसी भृत्य वा सन्तान को किसी कार्य्य के करने की आज्ञा न दें और कुकर्म्मों के करने का निषेधयुक्त उपदेश न करें तबतक उसको किसी कर्म के करने न करने के लिये दोषी नहीं बना सकते और न उसको दण्ड दे सकते हैं यदि आप उसको दण्ड दें तो कोई भी आपको न्यायशील या भला नहीं कहेगा यदि आप किसी न्यायशील मनुष्य को किसी अपराधी को दण्ड देते देखेंगे तो आपको यह दो बातें ध्यान आवेंगी या तो उस अपराधी ने न्यायाधीश की आज्ञा को उल्लंघन किया है या वह न्यायाधीश अन्यायी है पहिली अवस्था में तो उसकी आज्ञा का प्रचार होना आवश्यक है ॥

महाशयगण! अब आप विचारें कि संसार में जो करोड़ों जीव जो नाना प्रकार के दुःख पारहे हैं इन को देखकर समझदार मनुष्य या तो दुःख को पूर्व कर्म का फल समझेगा वा दुःखदाता ईश्वर को अन्यायी जानेगा किन्तु ईश्वर न्यायकारी है उसको अन्यायी कहना केवल मूर्खों का प्रलाप मात्र है हां यह सब मनुष्यों के पापों का फल है पाप ईश्वराज्ञा को उल्लंघन करने का नाम है इससे भी सिद्ध होता है कि ईश्वर ने अवश्य कोई आज्ञा दी है जिसके अनुसार चलकर मनुष्य

इन दु:खों से छूट सकता है जिसके विरुद्ध चलने ही से मनुष्य इन दु:खों से ग्रस्त हुआ है।

प्यारे भाइयो! जब इस प्रकार ईश्वर निर्मित नियम या आज्ञा या सत्यविद्या युक्त पुस्तक की आवश्यकता प्रतीत होती है और ईश्वर के न्यायादि गुणों से भी लक्ष्य होता है कि अवश्य उसने प्रकृति के नियमों को संसारमें प्रचार किया है।

प्यारे पाठको! यदि हम यह मान लें कि संसार में ईश्वर आज्ञा प्रचलित है तो हमें उसका विचार करना पड़ता है कि ईश्वर आज्ञा के लक्षण क्या हैं या ईश्वर ने जो हमें वेदों का ज्ञान दिया है वह कैसा है? पहिला लक्षण हम आवश्यकता के अनुसार यह करते हैं कि "हिताहितसाधनतावोधकत्वं वेदत्वम्" अर्थात् जो हित जीवात्मा के अनुकूल और अहित जीवात्मा के प्रतिकूल साधनों का बोधक अर्थात् बतलानेवाला हो उसे वेद कहते हैं तो यह लक्षण सब ग्रन्थों में अतिव्याप्त होता है अर्थात् सब ग्रन्थ थोड़ी बहुत हित की विधि और अहित का निषेध लिये रहते हैं फिर लक्षण इस प्रकार करते हैं कि "हिताहितसाधनतावोधकानि चापुरुषवाक्यानि इति वेदा" अर्थात् जो हिताहित का बोधक अपुरुषवाक्य अर्थात् किसी मनुष्य का कहा हुआ वाक्य नहीं उसे वेद कहते हैं अब नास्तिकों के ग्रन्थों और कुरान अंजील तौरेत जबूर इन पुस्तकों में अतिव्याप्ति होगी क्योंकि जैन

लोग अपने तीर्थंकरों को ईश्वर मानते हैं और मुसलमान लोग कुरान को ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं ईसाई अंजील और यहूदी तौरेत और ज़बूर को, अब वेदों का लक्षण यह होगा "हिताहितसाधनताबोधकानि चापुरुषवाक्यानि ब्रह्मप्रतिपादकानि सृष्टिकर्माविरुद्धानि इति वेदाः" इसमें जो अवस्था हिताहित ज्ञान का बोधक पुरुषवाक्य न हो ब्रह्म का प्रतिपादक हो और सृष्टिक्रम विरुद्ध न हो उसे वेद कहेंगे परन्तु वेद शब्दमय है शब्द को प्रमाण नहीं मानाजाता जबतक उसमें यह दोष पाये जावें जैसा महात्मा गौतमजी ने शब्द परीक्षा में लिखा है।

"तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तिदोषेभ्यः"

अर्थ—शब्द अप्रामाण्य है क्योंकि उसमें अनृत नाम झूंठ होना व्याघात नाम परस्पर विरुद्ध शब्द कभी सिद्धिदायक नहीं होता इस कारण उसको प्रमाण नहीं माना जाता क्योंकि ईश्वर सर्वज्ञ है वह अनृत वचन कभी नहीं कहता उसका कथन तत्वज्ञान के अनुकूल होता है इस कारण वेदों में यह दोष न होना चाहिये और सर्वज्ञ अपने पूर्व कथन को भूलकर उसके विरुद्ध भी नहीं कहता इस कारण व्याघात दोष भी वेदों में नहीं हो सकता और पुनरुक्ति भी अज्ञानी के कथन में हुआ करती है वेदों को इन दोषों से रहित गौतम आदि महात्मा ऋषियों ने अपने२ शास्त्रों में सिद्ध कर दिया है।

क्रमशः

ट्रैक्ट सोसाइटी वैदिकधर्मप्रचारकमण्डली गुरुकुल बदायूं के नियम ॥

१-यह ट्रैक्ट सोसाइटी वैदिकधर्म्म व देवनागरी प्रचार और गुरुकुल के लाभ के लिये जारी की जाती है।

२-जो महाशय २५) रुपये इस सुसाइटी की सहायतार्थ दान देंगे उनके नाम से एक देवनागरी ट्रैक्ट ५००० छपवाया जायगा जो गरीबों को मुफ्त और आम लोगों को)। में दिया जायगा। और जो मूल्य प्राप्त होगा वह गुरुकुल में खर्च किया जायगा।

३-जो महाशय ५००) रुपये गुरुकुल की सहायतार्थ दान देंगे उनके नाम से १००००० ट्रैक्ट छपवाकर जारी किया जायगा। जो मूल्य प्राप्त होगा उस से एक कमरा बनवाकर उस पर दानी महाशय के नाम का स्मारक चिन्ह लगाया जायगा।

४-जो महाशय देवनागरी प्रचार के अतिरिक्त वैदिक धर्म के प्रचार के लिये इस सोसाइटी को १०००) रु० ट्रैक्ट छपवाने के लिये दान देंगे उनके नाम से १००० उर्दू ट्रैक्ट छपवाया जायगा जिसकी मूल्य प्राप्ति गुरुकुल में खर्च होगी।

५-जो लोग बांटने के लिये)। वाला १००० ट्रैक्ट मंगवायेंगे उनको ८) रु० में १००० ट्रैक्ट और १०० मंगावेंगे उनको १) रु० में दिये जावेंगे।

६-जो किताब बेचने वाले इस सोसाइटी के एजेन्ट होना चाहें उनको फीसदी ४०) रु० दाखिल करना होगा और कमीशन ३०) फीसदी दिया जावेगा।

७-उधार मूल्य पर पुस्तकें किसी को नहीं दी जावेंगी और न यह सुसायटी किसी से उधार लेगी।

मैनेजर ट्रैक्ट सुसायटी गुरुकुल सूर्यकुंड बदायूं

ओ३म्

वेद किस पर प्रकट हुए

अर्थात्

ब्रह्माजी ने वेद रचे या अग्नि, वायु, आदित्य
अङ्गिरा द्वारा परमात्मा ने प्रकट किये

ट्रैक्ट नं० २

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती कृत

जिसको
प्रबन्धकर्त्ता वैदिकधर्मप्रचारक मण्डली
ने
वैदिकयन्त्रालय
अजमेर में
छपवा कर प्रकाशित किया

प्रथमबार ५००० } मार्च १९०३ { मूल्य)॥

मुन्शी जी की इस पर शंका ये है कि "वै" शब्द श्रुति में नहीं और "सूर्यात्" की जगह आदित्यात् है प्यारे मित्रो ! 'वै' और 'एव' पर्य्याय शब्द हैं और ऐतेरय ब्राह्मण की श्रुति में 'एव' शब्द विद्यमान है जिसके अर्थ निश्चय (यकीन) के हैं फिर आपका कहना किस तरह पर ठीक माना जासकता है क्योंकि सिद्धान्त में तो कुछ भी भेद न आया रहा सूर्य और आदित्य ये भी पर्य्याय शब्द हैं इस से भी कुछ आपका कार्य सिद्ध न हुआ और जो आप कहते हैं "अजायत" शब्द बढाया है वह भी इस श्रुति में विद्यमान है।

और पृष्ठ १० में मुन्शीजी कहते हैं कि स्वामीजी ने जो अग्नि आदि को महर्षि लिखा है ये ठीक नहीं क्योंकि वेदों में इनको देवता कहा गया है कि जिसके प्रमाण में आप ये मन्त्र पेश करते हैं ॥

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्योदेवता चन्द्रमा देवता०

मुन्शी जी के इस लेख ने तो विदित कर दिया कि सचमुच मुन्शीजी की राय को हठ ने अपना घर बनालिया था क्योंकि उन्होंने जड़ वस्तु देवताओं के लिये जो वेदों में प्रमाण था विना प्रसंग के उपस्थित किया। सायणाचार्य अपने भाष्य में तो अग्नि, वायु और आदित्य को जीव विशेष बतला रहे ह परन्तु मुन्शी जी

उसके विरुद्ध समझ कर कि न तो चन्द्रमा जीव विशेष है न सूर्य जीव विशेष है किन्तु जड़ पदार्थ हैं उनको आँखों के स्थान में बता रहे हैं किन्तु पृष्ठ २५ में तो मुन्शीजी ने यही मन्त्र उद्धृत करके स्पष्ट लिखा है कि ब्रह्माजी ने अग्नि, वायु सूर्य आदि को पैदा किया क्याही अच्छा होता कि मुन्शीजी इस लेख से पहिले इस श्रुति के अर्थों को गुरु से पढ़ लेते।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशाद् वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यःपृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नमन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः ॥

प्यारे मित्रो! चूंकि ब्रह्मा पुरुष है इस लिये वह अग्नि आदि वसु देवताओं से पीछे पैदा हुआ मुन्शी जी को इतना भी ख्याल न आया कि श्रुति के अनुकूल जल अग्नि के बाद पैदा हुआ और आप के ब्रह्माजी मतानिव पुराणों के कमल से पैदा हुए तब उनको चारों ओर जल ही जल नजर आया भला अब सोचिये ब्रह्मा से पहिले जल और जल से पहिले अग्नि था या नहीं महाशय मुन्शीजी साहब जब कि शतपथ में अग्नि वायु आदित्य से वेदोत्पत्ति सिद्ध है और मनु ने भी इसको माना है ॥

अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥

ऐतरेय ब्राह्मण भी अग्नि वायु से वेदों का प्रादुर्भाव

जीवविशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् ॥

जीव विशेष अग्नि वायु आदित्य को वेदों का प्रकाशक होने से । महाशय! सायणाचार्य खुद ही नहीं लिखता ऐतरेय ब्राह्मण का एक हवाला भी पेश करता है ।

ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यादैतरेय ब्राह्मण पञ्चकम् ॥ ३२ ॥

क्यों महाशय ! क्या सायणाचार्य ब्रह्मा पर वेद उतरना मानता है या अग्नि वायु आदित्य आदि ऋषियों पर मुन्शी जी ने पुस्तकों का विचार किया नहीं विना पढ़े लिखे लिख मारा कि सारे आचार्य्य इस पर एक मत हैं । मुन्शी जी ने एक भी आचार्य्य का नाम जिस ने वेदों पर भाष्य किया हो अपने प्रमाण में नहीं लिखा मुन्शी जी ने जो " जनी प्रादुर्भावे " इस धातु को लेकर यह बात लिखी कि अग्नि वायु आदित्य ने इनका कर्मकाण्ड प्रचार किया होगा। यह भी पुस्तकों के न देखने का फल है यदि आप आचार्य्यों की सम्मति को शास्त्रों में पढ़े होते तो आप को यह झूठा वहम न होता देखो सायणाचार्य्य लिखते हैं ।

ईश्वरस्याग्न्यादिप्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम् ॥

यहां पर मुन्शी जी का आचार्य्य तो अग्नि आदि का प्रेरक

होने से ईश्वर को वेदे का निर्माता ठहराता है और मुन्शीजी उस के विरुद्ध अपनी कपोल कल्पना से ब्रह्मा से अग्नि वायु आदित्य का पढ़ना बतलाते हैं।

प्यारे पाठकगण ! आप न्याय करें कि आचार्य्य की सम्मति के विरुद्ध स्वामी जी हैं या मुन्शी जी। जब सायणाचार्य चारों वेदों का भाष्यकर्त्ता मुन्शी जी की सम्मति को झूठी बतला रहा है तो समझ लीजिये कि मुन्शीजी का यह कथन कि सब आचार्य्य उस पर सम्मत हैं ठीक नहीं।

मुन्शीजी ने गायत्री उपनिषद् को भी नहीं देखा नहीं तो ज्ञात हो जाता कि ब्रह्मा वेदों से पैदा होता है अर्थात् वेद के पढ़ने से ब्रह्मा बनता है।

गायत्री उपनिषद्—वेदात् ब्रह्मा भवति ॥

जिसका अर्थ यह है कि वेदों से ब्रह्मा होता है न कि ब्रह्मा से वेद ॥ जब कि अग्नि आदि से तो वेदो की उत्पत्ति मानी जाती है और वेदों से ब्रह्मा की तो इस दशा में आपका लिखना किसी तरह मानने के योग्य ज्ञात नहीं होता ॥

पृष्ठ ९ मुन्शीजी ने स्वामीजी का लिखा हुआ शतपथ का एक वाक्य प्रस्तुत किया है।

अग्नेर्वै ऋग्वेदोऽजायत वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः ।

॥ ओ३म् ॥

वेद किस पर प्रकट हुए ॥

———०::*::०———

प्यारे पाठक ! इस संसार में यह नियम प्रतीत होता है कि हर एक मनुष्य जिस प्रकार के संस्कार रखता है, हर एक चीज़ के तत्व को उसी प्रकार का बताना अपना धर्म समझता है बहुत थोड़े मनुष्य हैं कि जिनको सत्य की जिज्ञासा हो और झूठ से घृणा करें परन्तु याद रखना चाहिये कि मनुष्य इस में बटोही के समान है और बटोही के वास्ते उचित है कि वह हर क़दम पर अपने पांव की ज़मीन छोड़े अगर वह उसी जगह पर खड़ा रहे तो कभी अभीष्ट स्थान का मुंह नहीं देख सकता इस लिये जो मनुष्य विना अनुसन्धान हठ करने के आग्रही हो गये हैं उनको सत्य असत्य का कुछ विवेक नहीं रहता और वह अपने संस्कार एवं अविद्या के कारण सदा सत्य से विमुख रहा करते हैं ॥

प्यारे दर्शक ! आज मुझे मुन्शी इन्द्रमणि जी की बनाई हुई पुस्तक "वेदद्वारप्रकाश" एक सज्जन पुरुष के द्वारा मिली

जिसको देखकर मैं चकित होगया कि संसार में ऐसे भी मनुष्य उपस्थित है जो अशुद्धि करके दूसरों को भी अशुद्धि में डालते हैं और अपनी अशुद्धि को सच्ची और दूसरों की सच्ची बात को अशुद्ध करने का उपाय करते हैं चकि ऐसे पुरुषों के लेखों से स साधारण के भ्रम में पड़ने का सन्देह है इसवास्ते इसका उर लिखना मुझे आवश्यकीय विदित हुआ ॥

मुन्शी साहब ने पहिले पृष्ठ में, लिखा है इसके उपरान्त सत्य के जिज्ञासु और असत्य के जिज्ञासु पुरुषों को ज्ञात हो कि अनादि काल से ऋषि, मुनि, पण्डित और आचार्य्य एक म होकर यह निश्चय करते चले आये हैं कि वेद हमको प्रमाण के द्वारा मिला ।

शोक ! मुन्शी साहब ने आचार्यों का नाम तो लिख परन्तु प्रमाण कोई भी नहीं दिया। प्यारे मित्रो ! आर्ज त चारो वेदों का भाष्य केवल सायणाचार्य के और किसी ने नं किया शोक कि मुन्शी जी ने उसका भाष्य और भूमिका का दश तक नहीं किया और यूंही लिख दिया कि सब आचार्य उस सहमत हैं। देखिये सायणाचार्य ऋग्वेद भाष्य की भूमिका में लिखते हैं देखो सायणभाष्य छापा मुम्बई पृष्ठ २

शोक ! मुन्शीजी को लिखते समय आग्रह के कारण आगा पीछा स्मरण न रहा एक जगह खुद अग्नि को तपस्वी लिखा और दूसरी जगह उनके ऋषि होने पर शंका की और कहा कि वेदों में देवता माने गये हैं ऋषि नहीं ॥

प्यारे पाठकगण ! इसी तरह पर आदमी जब तक किसी वस्तु के तत्व को नजाने तब तक उने यथार्थता से उसका ज्ञान नहीं होता और जब तक ठीक ज्ञान न हो तब तक उस पर अमल नहीं होसकता है और जब तक अमल न हो तब तक आत्मा को शान्ति नहीं होती, जब तक आत्मा को शान्ति न हो तब तक मनुष्य हठ और दुराग्रह से बच नहीं सकता और उसको पुराने संस्कारों के अनुकूल सदैव अविद्या से कष्ट होता है और दूसरे जो अविद्या से स्वार्थता उत्पन्न होजाती है उसकी चिकित्सा भी विद्या है मैंने जहां तक पुस्तकों को देखा तो उनमें अग्नि वायु आङ्गिरा आदित्य पर ही वेदों का उतरना बताया गया है और ये ठीक भी है कि जो ऋषि सृष्टि के आदि में पैदा होते हैं उनको मुक्ति से लौटने के कारण शुद्ध संस्कार और समझने की शक्ति होती है और उन्हीं के आत्मा में परमात्मा वेदों का उपदेश करते हैं और ब्रह्मा तो चारों वेदों के जानने वाले का नाम है वो हर एक यज्ञ में अपनी

योग्यतानुसार बनाया जाता है इस वास्ते ब्रह्मा के सदैव बनने से और अग्नि आदि के सृष्टि के आदि में पैदा होने से मालूम होता है कि वेदों का प्रकाश इन्हीं महात्माओं पर हुआ इस वास्ते वेदों के हर एक भाष्यकार ने वेदों का अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा ऋषियों पर उतरना माना है ब्रह्मा पर नहीं ॥

प्यारे पाठकगण ! जब तक हमें प्रामाणिक ग्रन्थों से इस बात का प्रमाण न मिल जावे तो किस तरह कोई बुद्धि॰ ॰रुष उसको मान सकता है और वेदानुकूल प्रामाणिक ग्रन्थों में ब्रह्मा पर वेदों के उतरने का कहीं गन्ध भी नहीं इस लिये स्वीकार करना पड़ता है कि वेद अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा पर उतरे जब तक विपक्षी लोग कोई पुष्ट प्रमाण उसके खण्डन में न देवें निस्सन्देह प्रत्येक मनुष्य को ये ही मानना पड़ता है ॥

प्यारे पाठकगण ! आप उद्योग करें कि संसार में वेदों का प्रचार अधिक हो ताकि वेद के वे सिद्धान्त जो आज साधारण लोगों पर विदित न होने से उपयोगी होने पर भी संसार को लाभ नहीं पहुंचा सके उनसे संसार को लाभ पहुंचाने और लोग वेदों के अभ्यास से अपनी बुद्धि को सुधार कर

भी निकाल सकता है क्या कहीं दुह् धातु दानार्थ आज तक किसी ने प्रयोग की है यदि की है तो इसका उदाहरण दीजिये वरना इस झूठे दावे से बाज़ आइये यद्यपि व्याकरण में धातु यानी मसदर के अनेक अर्थ होते हैं परन्तु वे परस्पर विरुद्ध नहीं होसकते चूंकि देना और लेना परस्पर विरुद्ध है। कौन आदमी है जिसको कहा जावे कि गाय से दूध दुहा गया और अर्थ ये किये जावें कि गाय का दूध दिया मुन्शी जी! यहां कुल्लूकभट्ट और स्वामीजी का अर्थ ठीक है और पञ्चमी विभक्ति है। आपने जो शास्त्रज्ञानशून्य होकर लिख मारा ये आपकी भूल है और आपने जो पराशर सूत्र आदि के प्रमाण दिये हैं वह एक दूसरे के विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं और असम्भव भी हैं क्योंकि कहीं आप सूर्य को पृष्ठ २६ पर ब्रह्मा जी का बेटा ठहराते हैं और कहीं पृष्ठ २७ में ब्रह्माजी के बेटे का दौहित्र बतलाते हैं॥ मुन्शीजी साहब ने जो ये लिखा है कि अग्नि आदि की उत्पत्ति से पहिले ब्रह्माजी के पास वेद थे तो इसके लिये प्रमाण देना चाहिये नहीं तो आपका कहना कोई प्रमाण नहीं और जो सांख्य का सूत्र आपने उपस्थित किया है वो ब्रह्मा को सृष्टि का आदि नहीं बतलाता किन्तु उसके ज्ञानवान् होने से तात्पर्य है सूत्र ये है—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात्।

जिसका प्रयोजन यह है अर्थात् उच्चकोटि के ज्ञानी चारों वेदों के वक्ता ब्रह्मा से लेकर स्थावर तक जिस कृदर सृष्टि है वो सब पुरुष के लिये है रही ये बात कि ब्रह्मा ने ब्रह्म विद्या अथर्वा आदि को पढ़ाई है उसका प्रयोजन यह है कि ब्रह्मविद्या से अभिप्राय उपनिषदों से हैं वेदों से नहीं क्योंकि ये ब्रह्मादि ने ब्राह्मण ग्रन्थ बनाए और उपनिषद् भी ब्राह्मण ग्रन्थों से निकले जैसे बृहदारण्यक उपनिषद् शतपथ ब्राह्मण का एक काण्ड है इसलिये ये ग्रन्थ ब्रह्माजी ने ऋषियों को पढ़ाये मुन्शीजी ने जो प्रस्ताव किया है वो सरासर ऐतरेय ब्राह्मण के विरुद्ध है और सायणाचार्य्य की भी सम्मति के विपरीत है और गायत्री उपनिषद् शतपथ के विरुद्ध होने से निश्चय अशुद्ध है ॥

और मुन्शीजी जो संज्ञा या नाम आदि का कारण ब्रह्मा को मानकर ये लिखते हैं कि अग्नि वायु आदित्य आदि नाम ब्रह्मा जी ने रक्खे । ये तो स्पष्ट प्रसिद्ध है संज्ञा कर्म ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं जैसा कि महर्षि कणाद वैशेषिक शास्त्र में लिखते हैं:-

ब्राह्मणे संज्ञा कर्म०

अर्थात् संज्ञा आदि का प्रचार ब्राह्मण ग्रन्थों में है यदि मुन्शीजी ये कहें कि ब्रह्मा से पहिले अग्नि वायु आदित्य नाम किसने रक्खे हैं तो मैं कहता हूं "ब्रह्मा" यह नाम किस तरह रक्खा गया यह शंका दोनो तर्फ बराबर है ॥

मानता है और गोपथ ब्राह्मण में भी ऐसा लिखा है ॥

अग्नेर्ऋग्वेदं वायोर्यजुर्वेदमादित्यात् सामवेदम् ।

अग्नि से ऋग्वेद पैदा हुआ और वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद पैदा हुआ जिससे स्पष्ट शब्दों में पाया जाता है कि अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा ऋषियों पर वेद उतरे। गोपथ ब्राह्मण में जो सिलसिला (क्रम) ब्रह्म परमात्मा से लेकर अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा तक प्रतिपादन किया गया है उसमें कहीं ब्रह्मा का नाम तक नहीं और अङ्गिरा को तो स्पष्ट शब्दों में ऋषि लिखा है जब कि अथर्व का पैदा या प्रकाश करना अङ्गिरा नामक ऋषि द्वारा है तो फिर किस तरह कहा जासकता है कि अग्नि आदिक ऋषि नहीं हैं और वेदों का प्रकाश सिवाय चेतन के हो नहीं सकता और भौतिक अग्नि वायु आदित्य अचेतन हैं हां अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा के लिये देवता शब्द भी आसकता है क्योंकि देवता विद्वान् का नाम है और भौतिक अग्नि वायु और सूर्य को भी दिव्यगुण वाला होने से देवता कह सकते हैं गायत्री उपनिषद् से भी यही पाया जाता है कि वेद से ब्रह्मा बनता है यानी वेदाध्ययन से ब्रह्मा कहलाता है तो इस अवस्था में इन सारे पुस्तकों के प्रमाणों के विरुद्ध उपनिषद् का मुकाबला ही क्या है और उस श्रुति का अर्थ ये हो सकता है:—

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥

जिसने ब्रह्मा को पूर्व काल में पैदा किया यानी चारों वेद अग्नि आदि के द्वारा उसको पढ़ाकर ब्रह्मा बनाया। अन्यथा वेदों के बिना तो वह ब्रह्मा हो नहीं सकता और पूर्व शब्द सापेक्ष्य है नाक श्वेताश्वतर के बनाने वाले से ब्रह्मा पहिले पैदा हुए इसी वास्ते इसके ये अर्थ नहीं कि वो सब से पहिले पैदा हुवे इसके वास्ते कोई मन्त्र प्रमाण नहीं—

ब्रह्मा देवानां प्रथमो बभूव ॥

ब्रह्मा देवतों में पहिले पैदा हुआ जिसके अर्थ प्रथम होने के हैं जैसे किसी की योग्यता को देखकर कहा जाता है ये सब से प्रथम है इसके अर्थ ये होते हैं कि ये सब से योग्य है ब्रह्मा सम्पूर्ण विद्वानों से अधिक विद्वान् है इस वास्ते कहा गया कि ब्रह्मा देवतों में अव्वल नम्बर पर है या संसार में जिस कदर विद्वान् होंगे ब्रह्मा उन सब का शिरोमणि होगा क्योंकि ब्रह्मा चारों वेद का ज्ञाता होता है बाकी इससे कम होंगे इस वास्ते यहां प्रथम मनुष्य का वाचक नहीं किन्तु योग्यता का बतलाने वाला है ॥

और आपने जो मनु का अर्थ उलटा किया है ये आपकी ज़ुबरदस्ती है, धातु के अनेकार्थ होने से क्या कोई विरुद्ध अर्थ

अपनी आत्मा की शान्ति प्राप्त करके संसार की स्वार्थ आदि व्याधियों से बच कर संसार में परोपकार करते हुए अन्त को मुक्ति सुख को प्राप्त करें ॥

ओ३म् शान्तिः ३

ओ३म् ।

आर्य्य समाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३—वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना और सुनाना सब आर्य्यों का परमधर्म है ।

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़न में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करना चाहिये ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

॥ ओ३म् ॥

टरेक्ट नम्बर १३

धर्मशिक्षा

पहिला भाग

जिस को

स्वामी दर्शनानंद सरस्वती जी ने

दयानन्द टरेक्ट सोसाइटी के हितार्थ

महाविद्यालय मैशीन प्रेस

ज्वालापुर हरिद्वार में

छपवाया

—=+:※:+=—

४००० [प्रति   [मूल्य)।

ओ३म्

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गौशाला, आर्टस्कूल; इत्यादि उपस्थित हैं ॥

ओ३म्

धर्म शिक्षा नम्बर १

प्रश्न-धर्म किसे कहते हैं ॥

उत्तर—धर्म उन स्वाभाविक गुणों का नाम है कि जिन का होना वस्तु की सत्ता को स्थिर रखता है जिन के न होने पर वस्तु की सत्ता स्थिर नहीं रह सकती ॥

प्रश्न-हमें दृष्टान्त दे कर समझा दो ॥

उत्तर—जिस प्रकार गरमी और तेज अग्नी का धर्म्म है जहां अग्नी होगी वहां गरमी और तेज अवश्य होगा और जब गरमी और तेज न रहेगा तब आग भी न रहेगी

प्रश्न-और दृष्टान्त दो ॥

उ०-जिस प्रकार मनुष्य जीवन के वास्ते शरीर के अंग और प्राण हैं यदि कोई अंग कट जावे तो मनुष्य जीवन नाश न होगा परन्तु प्राणों के न रहने पर कभी मनुष्य जिवित न रहेगा ॥

प्रश्न- क्या जीव का धर्म्म प्राण धारण करना है ॥

उ०-जीव का धर्म्म ज्ञान और प्रयत्न है अर्थात् ज्ञान के अनुसार काम करना है ॥

प्रश्न-जीव को कर्म करने की आवश्यक्ता क्यों हुई ॥

उ०-क्योंकि जीव अल्पज्ञ है जिस से उस का दुःख उत्पन्न होता है अतः दुःख को दूरकरने के लिये जीव को कर्म करने की आवश्यकता है ॥

प्रश्न, दुःख का लक्षण क्या है ॥

उ०—आवश्यक्ता का होना और उस को पूरनी के साधन या न होना दुःख है या स्वतन्त्रता का न होना दुःख है ॥

प्रश्न—दुःख के अर्थ तो तकलीफ के हैं ॥

उत्तर—दुःख और तकलीफ दो प्रयाय वाचक शब्द हैं जो लक्षण दुःख का है वही तकलीफ का है ॥

प्रश्न-दुःख के वास्ते कोई प्रमाण देकर समझाओ ॥

उत्तर-जिस प्रकार एक मनुष्य घर में बैठा है उसे कोई कष्ट नहीं यदि उसे घर से निकलने को बल पूर्वक रोक दिया जावे तो वह बन्धन ही दुःख है जब क्षुधा लगे और भोजन न मिले तो दुःख है यदि भोजन मिल जावे तो कष्ट नहीं इसी प्रकार बहुत से उदाहरण मिल सक्ते हैं ॥

प्रश्न-जीव अल्पज्ञ क्यों है ॥

उत्तर-एकदेशी अर्थात् परिछिन्न होने से ॥

प्रश्न-जीव दुःख से किस प्रकार छूट सक्ता है ॥

उ०-परमेश्वर के जानने और उस की आज्ञानुकूल कार्य्य करने से ॥

प्रश्न-परमेश्वर एक है या अनेक ॥

उत्तर-ईश्वर एक है ॥

प्रश्न-ईश्वर कौन है ॥

उत्तर-जो इस जगत को रचने वाला पालने वाला और [ना]श करने वाला है ॥

प्रश्न-ईश्वर के होने में क्या प्रमाण है ॥

उत्तर-जगत की प्रत्येक वस्तु से नियमानुसार कार्य्य [क]रना और प्रत्येक वस्तु में नियम होना और इन नियमों के [प]रीक्षार्थ वेद जैसे पूर्ण शास्त्र का होना ॥

प्रश्न-ईश्वर को जगत के रचने की क्या आवश्यक्ता थी ॥

उत्तर-उस के स्वाभाविक दया और न्याय की प्रेरणा ही [ज]गत बनाने का हेतु है ॥

प्रश्न-न्याय और दया तो किसी दूसरे पर होती है क्या ईश्वर के अतिरिक्त और वस्तु भी जगत से पहले थी जिस पर न्याय और दया की प्रेरणा से जगत बनाया ॥

उत्तर-प्रकृती और जीव दो अनादि पदार्थ ईश्वर के अतिरिक्त हैं अर्थात् ईश्वर प्रकृती और जीव तीन वस्तु अनादि जीवों पर दया और न्याय के लिये ईश्वर जगत रचता अर्थात् उत्पन्न करता है ॥

प्रश्न—क्या जगत से जीव और प्रकृति पृथक् हैं ॥

उ०-जीव और प्रकृति अनादि हैं और जगत उत्पन्न किया हुआ है ॥

प्रश्न-यदि जीव और प्रकृति परमेश्वर के उत्पन्न किये हुये नहीं हैं तो परमेश्वर के आज्ञाकारी यह किस नें किये ॥

उ० परमेश्वर अपने सर्वोत्तम गुण आनन्द और सर्वदाता आदि के कारण से इन पर अनादि राज्य करता है ॥

प्रश्न जो लोग परमेश्वर को प्रकृती और जीव आदि का रचने वाला कहते हैं उन का विचार असत्य है ॥

उ०-उत्पन्न करने का अर्थ प्रकट करने का है अभाव, से भाव में लाना नहीं क्योंकि विना शरीर में आये जीव का और विना कार्य्य जगत बने प्रकृति का ज्ञान नहीं हो सक्ता इस वास्ते जो शरीर और जगत का रचने वाला है वही उत्पन्न करने वाला है ॥

प्रश्न-ईश्वर कहां है ॥

उत्तर, कहां का शब्द एक देशी वस्तु के लिये आता है क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है इस लिये ईश्वर कहां है यह प्रश्न ही अयुक्त है जैसे कोई कहे दूध में सफेदी कहां है तो कहेंगे कि प्रत्येक स्थान में यदि कोई कहे दही में मक्खन कहां है उत्तर होगा कि प्रत्येक स्थान में और कोई कहे कि मिश्री में मिठास कहां है जवाब होगा कि प्रत्येक स्थान में, इसी तरह पर जो वस्तु प्रत्येक स्थान में रहती हो उस के लिये कहां के प्रश्न का उत्तर प्रत्येक स्थान में जगह जगह होगा कारण यह कि कहां कहने का अर्थ किसी एक स्थान ज्ञात करने का है अतः यह प्रश्न अयुक्त है ॥

प्रश्न. यदि ईश्वर प्रत्येक स्थान में है तो हमें दृष्टि क्यों नहीं आता क्योंकि दूध में सफैदी हम नेत्र से देखते हैं मिश्री में मिठास हम जिह्वा से ज्ञात करते हैं ॥

उ०, वर्तमान वस्तु के दृष्टि न आने के ६ कारण होते हैं प्रथम वस्तु हमारे नेत्र से बहुत समीप हो जैसे सुरमा नेत्र से बहुत निकट होने के कारण दृष्टि नहीं आता दूसरे विशेष दूर होने से दृष्टिगोचर होता तीसरे अति सूक्ष्म होने से जैसे प्रमाणु अर्थात् जरें विद्यमान होने पर भी दृष्टि नहीं होते चौथे बहुत बड़ा होने से जैसे हिमालय पांचवें इन्द्री अर्थात् चक्षु आदि में ख़राबी आ जाने से जैसे अन्धे को दूध में सफेदी दृष्टिगोचर नहीं होती छटे अन्तर में आवर्ण होने से जैसे हम दीवार के उस तरफ की वस्तुओं को नहीं देख सकते ॥

प्रश्न—इन छः कारणों में से हमारे ईश्वर के न ज्ञान ने का क्या कारण है ॥

उ०. क्योंकि ईश्वर सर्व व्यापक है इस कारण जीव के अन्दर बाहर होने से बहुत ही समीप है और दूसरे बहुत ही सूक्ष्म है यही दो कारण हैं जिस से हमें ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं होता ॥

प्रश्न–जो बहुत ही निकट हो उस के दृष्टिगोचर न आने का क्या कारण है ॥

उत्तर–क्योंकि मनुष्य को प्रत्येक वस्तु के देखने के लिये प्रकाश की आवश्यकता है इस कारण जब तक नेत्र और वस्तु

के मध्य में प्रकाश की किरणे न हों तब तक नेत्र से उस वस्तु का सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि सुरमे को नेत्र से विशेष समीप होने के कारण नेत्र और सुरमे के मध्य प्रकाश की किरणें नहीं अतः उस का ज्ञान नहीं होता है ॥

प्रश्न-तो क्या हम ईश्वर को किसी प्रकार जान भी सकते हैं?

उत्तर. अवश्य हम ईश्वर को जान सकते हैं ॥

प्रश्न—किस प्रकार जान सकते हैं ?

उत्तर- जिस प्रकार से नेत्र के सुरमे को जान सकते हैं उसी प्रकार परमेश्वर को जान सके हैं ॥

प्रश्न-नेत्र के सुरमे को देखने के लिये तो केवल एक शीशे की आवश्यकता है शीशा हाथ में लिया और नेत्र का सुरमा नजर आया ॥

उत्तर. जिस प्रकार नेत्र के सुरमे को देखने के लिये बाहर शीसे की आवश्यकता है वैसे ही ईश्वर को ज्ञात करने के लिये भी एक आन्तरीय शीसा है ॥

प्रश्न-वह आन्तरीय शीसा कौनसा है ?

उ०-मन अर्थात् मनुष्य का दिल एक शीसा है जिस से परमेश्वर को मालूम कर सके हैं ॥

प्रश्न-मन तो प्रत्येक मनुष्य के पास है तो प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर दृष्टिगोचर क्यों नहीं होता ॥

प्रश्न—मन क्या वस्तु है ।

उ०—मन वह भीतरी और सूक्ष्म वस्तु है जिसके कारण

हमें एक समय मे दो वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता ॥

प्रश्न—मन प्रकृती से बना है या अप्राकृत है वह नित्य है या अनित्य ।

उ०–मन प्रकृती से वना है उत्पात्ति वाला है नित्य नहीं ।

प्रश्न–मन तो प्रत्यके मनुष्य के पास है तो प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर दृष्टिगोचर क्यों नहीं होता ।

उ०–यदि शीसा और नेत्र के मध्य में प्रकाश न हो तो शीसे की उपस्थिती में नेत्र कासुरमा ज्ञात नहीं होता ॥

प्रश्न—मन और ईश्वर के मध्य कौन सा अंधेरा है जिस के कारण ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं होता ।

उ० आविद्या का अंधेरा जब तक विद्या के प्रकाश से दूर न हो तब तक ईश्वर दृष्टिगोचर नहीं हो सकता ॥

प्रश्न अविद्या के दूर करनेका उपाय क्या है ।

उ० सत्य विद्या ॥

प्रश्न क्या कोई असत्य विद्या भी है ।

उ० विद्या शब्द ज्ञान का दूसरा नाम है और ज्ञान दो प्रकार का होता है एक उत्पत्ति वाले पदार्थों का जानना दूसरे नित्य पदार्थों का जानना जो उत्पत्ति वाले पदर्थ हैं वह सब विकारी है इस वास्ते उन का जानना भी परिणाम है उसी को असत्य विद्या भी कहते हैं क्योंकि सत्य कहते हैं नित्य को यानी जो तीन काल में रहे लेकिन परिणामी की सत्ता स्थिर नहीं रहती इस वास्ते वह नित्य है ॥

प्रश्न—ज्ञान कितने प्रकार का होता है।

उ०—ज्ञान तीन प्रकार का है विद्या, अविद्या, सत्य विद्या॥

प्रश्न—अविद्या किसे कहते हैं।

उ०—पदार्थ के यथार्थ तत्व कोन जान कर उलटा ख्याल करता है उसी को अविद्या कहते हैं॥

प्रश्न—अविद्या गुण है या द्रव्य।

उ०—अविद्या गुण है॥

प्रश्न—अविद्या जीव का स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक।

उ०—अविद्या नैमित्तिक है स्वभाविक नहीं॥

प्रश्न—यदि अविद्या नैमित्तिक गुण है तो उस की उत्पत्ति का क्या कारण है।

उ०—इन्द्रियों की कमज़ोरी और संस्कार की खराबी अविद्या के उत्पत्ति का कारण है॥

प्रश्न—अविद्या से किस प्रकार का ज्ञान होता है।

उ०—चेतन यानी ज्ञान वाले जीवात्मा को अचेतन प्रकृति का कार्य्य जानना नित्य यानी अनादि वस्तुओं को उत्पत्ति वाली और उत्पत्ति वाली को अनादि समझना शरीर आदि अपवित्र पदार्थों को पवित्र और दुःख देने वाले पदार्थों को सुख का कारण और दुःख को सुख समझना इस प्रकार का ज्ञान अविद्या कहलाती है॥

प्रश्न—विद्या किसे कहते हैं।

उ०—चेतन जीवात्मा के ज्ञान का नाम जो अविद्या के गुण

से पृथक हो और जिस से जितने परिणाम होते जावें उसी प्रकार से शुद्ध परिणामी ज्ञान हो उसे विद्या कहते हैं ॥

प्रश्न–सत्यविद्या किसे कहते हैं ।

उ०–जो सर्वज्ञ ईश्वर का अप्रणामी ज्ञान है जो देशकाल और वस्तु के भेदसेबदलता नहींउसे सत्य विद्यां या वेद कहतेहैं

प्रश्न–सत्यविद्या और विद्या का भेद किसी दृष्टान्त से समझाओ ॥

उ०–जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश मनुष्यों के लिये संसार के आदि में ईश्वर ने उत्पन्न किया है वह प्रत्येक मनुष्य के लिये एकसा है लेकिन मानुषिक सृष्टि का प्रकाश चिराग लेम्प गैस बिजली आदि की अनेक भांति का है वह प्रत्येक गृह के लिये पृथक् २ भांति का है ॥

प्र०–क्या ईश्वरी ज्ञान के बिना मनुष्य अपने जीवन उद्देश्य पर नहीं पहुंच सकता ॥

उ०–कदापि नहीं जिस प्रकार प्रकाश के बिना नेत्र अपने काम को पूरा नहीं कर सकते ऐसे ही बुद्धि बिना ईश्वरी ज्ञान की सहायता अपना काम नहीं कर सकती ॥

प्र० नेत्र को काम के लिये प्रकाश की आवश्यकता है चाहे सूर्य का हो या लेम्प का इसी प्रकार बुद्धि को विद्या की सहायता चाहिये चाहे वह मनुष्य की बनाई हो या ईश्वर की ॥

उ०–जब कि मनुष्य का जीवन उद्देश्य बहुत कठिन और जीवन का समय बहुत न्यून है इस कारण वह ईश्वरीय ज्ञान

के कारण से ही कृतकार्य हो सकता है जिस प्रकार कोई मनुष्य दीपक को हाथ में लेकर दौड़ कर नहीं चल सकता ॥

प्र०—क्या कारण है कि मनुष्य सूर्य के प्रकाश में दौड़ कर चल सकता है और दीपक का प्रकाश लेकर नहीं चल सकता

उ०—जब कि दीपक का प्रकाश पवन को सहन नहीं कर सकता ऐसे ही मनुष्य की विद्या तर्क को सहन नहीं कर सकती दीपक के अस्त होने का भय चलने वाले को रोकता है और दूर तक देखने की शक्ति का न होना भी रोकने वाला है इसी प्रकार मनुष्य की विद्या केवल मान ली जाती है जिस को ई मान कहते हैं और जिस मार्ग पर विद्या की सहायता से चले उसे मत कहते हैं लेकिन मत और ईमान से कोई जीवनो द्देश्य पर नहीं पहुंच सक्ता बल्कि धर्म और ज्ञान से पहुंच सक्ता है

प्रश्न—मत और धर्म तो प्रयाय वाचक शब्द हैं।

उत्तर—कदापि नहीं मत के अर्थ मार्ग और धर्म का अर्थ स्वाभाविक गुण है ॥

प्रश्न—धर्म और मत की पहचान क्या है ॥

उत्तर—धर्म में सिवाय सर्वव्यापक परमेश्वर और अपने आत्मिक गुण का किसी प्राकृत वस्तु और मनुष्य से सम्बन्ध नहीं होता परन्तु मत बिना मनुष्य और प्राकृत सम्बन्ध के नहीं चल सक्ता ॥

प्रश्न—हमें धर्म और मत का दृष्टान्त दे कर समझाओ।

उत्तर—धर्म के दस लक्षण जो मनु ने लिखे हैं उन को पढ़ो

और मुसलमानों ईसाइयों को पुस्तकों की पढ़ो तो धर्म्म और मत का भेद ज्ञात हो जावेगा ॥

प्रश्न— मनु ने धर्म्म के दस लक्षण कौन से लिखे हैं ।

उत्तर-प्रथम धृति दूसरे क्षमा अर्थात् सहन करने की शक्ति तीसरे मन को स्थिर रखना चौथे चोरी का स्मरण तक न होने देना पांचवें शुद्ध यानी पाकीजह रहना छटे अपनी इन्द्रियों को वसमें रखना सातवें बुद्धि को बढाना आठवें विद्या को ग्रहणकरना नवें सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना दसवे क्रोध न करना ॥

ओ३म् शांतिः ३

दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी के सामान्य नियम

१–इस टरेक्ट सोसाइटी का आशय ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार करना और वेद मन्त्रों के शब्दों को सरल भाषा में व्याख्या करके और दर्शनों के प्रत्येक सूत्र पर एक टरेक्ट लिख कर उन के आशय का अच्छी तरह समझा कर आर्य पुरुषों का इस लायक बनाना है कि वह वैदिक धर्मके विरोधी के मुकाबले में स्वयं काम चला सकें बाहर से सहायता की आवश्यकता न रहे ॥

२–यह टरेक्ट सोसाइटी एक वर्ष में १६ पृष्ठ के ।। वाले ३६० ट्रैक्ट प्रकाशित किया करेगी जिस में वेद मन्त्रों की व्याख्या एक

टरेक्ट में एक मन्त्र १२५ दर्शनों के सूत्रों की व्याख्या एक टरेक्ट में एक सूत्र १२५ आर्य सिद्धान्तों पर विचार २५ टरेक्ट (मुखालिफ़ान) वैदिकधर्म के जवाब में ७५ आर्यसमाज के सुधार पर १० टरेक्ट ॥

३—जो मनुष्य इस टरेक्ट सोसाइटी के ग्राहक बनकर सहायता देंगे उन को १० दिन के पीछे इकट्ठे १० टरेक्ट)॥ के टिकट में भेजदिये जावेंगे जिस जगह १० ग्राहक होंगे उन को नित्य प्रति रवाना किये जावेंगे जिस जिले में १० समाजें १० टरेक्ट रोजाना लेने वाले होंगे या जिस जिले में १०० ग्राहक रोजाना टरेक्टके होंगे उस जिले को एक उपदेशक टरेक्ट सोसाइटी की ओर से विना वेतन के दिया जायगा ॥

४—जो समाजें देश टरेक्ट प्रति दिं लेंगीं उन को वर्ष में एक मास के लिये बिना वेतन लिये उपदेशक दिया जावेगा सिर्फ किराय रेल देना होगा जिस जिले में ऐसी दश समाजें होंगी उन को वर्ष भर के लिये बिना वेतन उपदेशक दिया जावेगा जिस जिले में ५००) दान देने वाला एक महाशय २५) दान देने वाले २० मनुष्य होंगे उस जिले का भी साल भर के लिये अवैतनिक उपदेशक दिया जावेगा॥

५-जो महाशय इस टरेक्ट सोसाइटी के एजेण्ट होना चाहें उन्हें २०) फीसदी कमीशन दिया जायगा हर एक दरख्वास्त मैनेजर महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार के पते से आनी चाहिये ॥

ओ३म् शम्

ओ३म्

ट्रैक्ट नम्बर १

सृष्टिप्रवाह से अनादि है

जिस को

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी

ने

दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी के हितार्थ रच कर

महाविद्यालय मैशीन प्रेस

ज्वालापुर हरिद्वार में

प्रकाशित किया

=X:※:X=

प्रथम बार ४ हजार प्रति]. [मूल्य)।

ओ३म्

सृष्टि प्रवाह से अनादि है.

आर्यसमाज का सिद्धान्त यह है कि जीव ब्रह्म और प्रकृति स्वरूप से अनादि है अर्थात् इनका कोई कारण नहीं है परन्तु सृष्टि प्रवाह से अनादि है जिसका उत्पन्न करने वाला ईश्वर है. शब्द अनादि का अर्थ जिसका आदि न हो अर्थात् जिसका कारण कुछ नहो. और सृष्टि का अर्थ है जो पैदा करीगई हो, इस स्थान पर वादि तर्क करता है कि आर्यसमाज का यह सिद्धान्त ठीक नहीं, क्योंकि इस में नीचे लिखे दोष आते होते हैं प्रथम तो प्रत्येक कार्य के पूर्व क्रिया का होना आवश्यकीय है और प्रत्येक क्रिया से पूर्व इच्छा का होना आवश्यकीय है और इच्छा से पूर्व कर्ता में उस गुणका होना (लाजमी) है कि जिससे स्पष्ट प्रकट है कि कार्य से क्रिया पूर्व होगी और कार्य पश्चात् होगा क्रिया और कार्य का एक साथ होना असम्भव है और क्रिया से इच्छा (इरादा) पहिले होगी और क्रिया पीछे क्रिया और

ओ३म्

सृष्टि प्रवाह से अनादि है.

आर्यसमाज का सिद्धान्त यह है कि जीव ब्रह्म और प्रकृति स्वरूप से अनादि है अर्थात् इनका कोई कारण नहीं है परन्तु सृष्टि प्रवाह से अनादि है, जिसका उत्पन्न करने वाला ईश्वर है. शब्द अनादि का अर्थ जिसका आदि न हो अर्थात् जिसका कारण कुछ नहो. और सृष्टि का अर्थ है जो पैदा करीगई हो, इस स्थान पर वादि तर्क करता है कि आर्यसमाज का यह सिद्धान्त ठीक नहीं, क्योंकि इस में नीचे लिखे दोष आते हैं प्रथम तो प्रत्येक कार्य के पूर्व क्रिया का होना आवश्यकीय है और प्रत्येक क्रिया से पूर्व इच्छा का होना आवश्यकीय है और इच्छा से पूर्व कर्ता में उस गुणका होना (लाजमी) है कि जिससे स्पष्ट प्रकट है कि कार्य से क्रिया पूर्व होगी और कार्य पश्चात होगा क्रिया और कार्य का एक साथ होना असम्भव है और क्रिया से इच्छा (इरादा) पहिले होगी और क्रिया पीछे जिस और

इच्छा का एकरसमय होना भी असम्भव है इच्छा से उस पूर्वोक्त गुणका पैदा होना भी आश्चर्यजनक है क्यों कि असम्भव पदार्थों की इच्छा नहीं होती अतः सृष्टि का अनादि होना और ईश्वर का अनादि होना किसी प्रकार सम्भव नहीं होसकता, और सृष्टि को प्रवाह से अनादि कहना भी कोई आशय नहीं रखता क्यों कि यह सम्बन्ध सगुण (सोपाधिक) है क्यों कि प्रवाह सृष्टि का गुण है और गुण किसी दशा में द्रव्य के बिना नहीं रह सकता अतः प्रवाह से सृष्टी अनादि है इसका अभिप्राय यही लेना होगा कि सृष्टि अनादि है क्योंकि सृष्टि अनादि है जिसका आशय यह है कि उसका कोई कारण नहीं जब सृष्टि का कोई कारण नहीं तो ईश्वर की सत्ता के लिए जो सृष्टि का कारण होना हेतु दिया गया है, अथवा आर्यसमाज के प्रथम नियम में जो ईश्वर को आदिमूल बतलाया है वह मिथ्या सिद्ध होता है जिससे आर्यधर्म (दयानन्दीयमत) नास्तिक सिद्ध होता है क्यों कि प्रथम तो उसका प्रथम नियम ही गिरजाता है द्वितीय ईश्वर की सत्ता में कोई हेतु नहीं रहता।

(उत्तर) वादि की यह तर्क अनभिज्ञता के कारण है क्यों कि संसार में तीन प्रकार के पदार्थ हैं (१) जड़ (गैर मुदरिक) जिन को तीनों काल में ज्ञान होही नहीं सकता (२) अल्पज्ञ जिन को कुछ ज्ञान तो स्वाभाविक होता है और विशेष ज्ञान पदार्थ और सामान के द्वारा उत्पन्न होता है, (३) सर्वज्ञ जिसका ज्ञान

नित्य और निर्भ्रान्त होने से उस में किसी प्रकार का बाह्य ज्ञान आता नहीं, अब अज्ञतो कर्म करने की शक्ती ही नहीं रखता और अल्पज्ञ स्वेच्छा से कर्म करता है और सर्वज्ञ स्वभाव से कर्म करता है न कि इच्छा से अबवादि ने अपनी अज्ञानता से अल्पज्ञ के वास्ते जिन साधनों की जरूरत है उनको सर्वज्ञ के गले में भी मढना चाहा है, परन्तु उसे सोचना चाहियेथा कि जहां हम क्रिया से पहले इच्छा को देखते हैं वहां हम उस के कारण को भी देखते हैं क्यों कि इच्छा अप्राप्त इष्ट की होती है यदि वह लाभ कारक भी हो तो न कि किसी प्राप्त हुवी वस्तु की इच्छा होती है, और नहीं अलाभ कारक वस्तु की इच्छा होती है, इस इच्छा का कारण उस अप्राप्त और इष्ट अर्थात् अप्राप्त लाभ कारक है जिसके प्राप्त करने की वह इच्छा करता है प्रथम तो आप कोई ऐसी वस्तु बनाही नहीं सक्के जो ईश्वर की इच्छा का कारण हो क्यों कि उसका ईश्वर की इच्छा से पूर्व होना जरूरी है यदि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार ऐसा मान भी लेवें तो वह वस्तुः जो ईश्वर की इच्छा का कारण होती है, नित्य है अथवा अनित्य यदि नित्य मानोगे तो ईश्वर के साथ इच्छा का कारण भी नित्य मानना पडेगा, पुनः कारण कार्य भाव का झगडा पड जावेगा और अन्त में एक ही नित्य मानना पडेगा।

यदि अनित्य मानों तो उस के जन्यत्व में इच्छा का होना

आवश्यकीय होगा, जिसके लिये पुनः किसी कारण की आवश्यकता होगी और पुनः उस कारण की अपेक्षा भी यही प्रश्न होगा जिससे अनवस्था दोष (तसलसुल) आजायगा, जिस से ईश्वर का इच्छा से कर्त्ता होना मिथ्या है द्वितीय आपने यह जो कहा कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है और सम्बन्ध सगुण (जो सीफ़ती) है यह भी मिथ्या है, क्यों कि प्रवाह सृष्टि के अनादि होने का कारण है न कि सृष्टि का गुण बहुत से मनुष्य यह कहेंगे कि प्रवाह का अर्थ क्या है इसका उत्तर यह है कि ईश्वर के संपूर्ण गुण अनादि होने से और उसका इच्छा रहित कर्त्ता होनेसे और सृष्टि की बार बार रचना करने का नाम प्रवाह है क्योंकि ईश्वर सर्वदा सृष्टि की रचना करता रहता है, अतः उसका कार्य सृष्टि भी अनादि है यहाँ इस स्थान पर यह प्रश्न खटकता है कि जब ईश्वर इच्छा रहित करता है और उसका सृष्टि उत्पन्न करना स्वभाव है तो प्रलय के समय वह क्या करता है क्यों कि उस समय सृष्टि तो उत्पन्न करता नहीं इसका उत्तर यह है कि ईश्वर की दी हुई चाली (हरकत) से प्रकृति के परमाणुओं में हरकत बराबर जारी रहती है जिस प्रकार रात्रि के दो पहर पर्यन्त अंधेरा बढ़ता जाता है और दो पहर के पश्चात् घटना आरम्भ होजाता है इधर दिन के बारह बजे तक धूप बढ़ती जाती है और दिन के बारह बजने ही घटनी आरम्भ होजाती है कोई पल भी ऐसा नहीं जो घटने

में रहित हो ऐसे ही २० दिसम्बर से दिवस बढ़ना आरम्भ हो जाता है और २० जून से घटना कोई दिन नहीं जिस में वृद्धि क्षय नहो यही दशा सृष्टि और परलय की है अर्थात् चार अर्ब बत्तीस करोड़ वर्ष सृष्टि और इतना ही समय परलय में व्यतीत होता है परन्तु जिस को ब्रह्म दिन अर्थात् सृष्टि कहते हैं उस का आदि वेद रूपी सूर्य के उदय होने से होता है अर्थात् जब से मनुष्य जाती उत्पन्न होती है और जब तक मनुष्य जाती रहती जाती है इस के आभ्यन्तर का यह नियत समय (मर्याद) है पशु कीट पतंग स्थावर पर्वतादिक इस समय से पूर्व उत्पन्न होजाते हैं और इसके बाद भी रहते हैं और जिस तरह प्रत्येक रात्री के पूर्व दिवस होता है और प्रत्येक दिन के पूर्व रात्री होती है कोई दिन नहीं जिसके पूर्व रात्री नहो और कोई रात्री नहीं जिसके पूर्व दिन नहो इसही प्रकार प्रत्येक सृष्टि से पूर्व परलय और परलय से पहिले सृष्टि होती है यद्यपि प्रत्येक सृष्टि और प्रलय का आदि और अन्त होता है परन्तुः इस चक्रका आदि और अन्त नहीं होसकता ।

(प्रश्न) जिस अवयवी के अवयव अनित्य हो वह अवयवी भी अनित्य होता है. यदि सृष्टि का उत्पन्न होना मानते हो तो चक्र (प्रवाह) भी अनित्य मानना पड़ेगा जिस प्रकार रात्री से पहिले दिन और दिवस से पूर्व रात्री होती है तो उसका आदि भी पाया जाता है क्योंकि रात्री और दिन सूर्य के उत्पन्न

उत्पन्न करती है अब चाहती नाश करता है।

(उत्तर) यह तो बिल्कुल मिथ्या है क्योंकि जहां स्वभाव से सृष्टि कर्त्ता मानने में उसमें दो प्रकार की सृष्टि का बिना किसी कारण के सम्भव नहीं—वहां स्वेच्छा से कर्त्ता मानने में भी दो प्रकार की इच्छा के लिए किसी कारण का होना आवश्यकीय है परन्तु स्वभाव से सृष्टि कर्त्ता (फाइलॉथिस्ट वाला) मानने वालों के पास तो जीवों के कर्म इस सृष्टि और प्रलय का कारण है उनके सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आसकता परन्तु इच्छा से सृष्टिकर्त्ता के माननेवालों में दोष आता है क्योंकि उनके पास कोई कारण इच्छा के बदलने का नहीं है अतः उनका सिद्धान्त बिल्कुल तुच्छ है।

(प्रश्न) तुम्हारी यह बात अपनी मन घड़त है अथवा इस में किसी प्रामाणिक पुस्तक का भी प्रमाण है।

(उत्तर) श्वेताश्वतरोपनिषद में स्पष्ट लिखा है।

नतस्यकार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयते स्वभाविकीज्ञानबलक्रियाच

(अर्थ) उस परमात्मा का शरीर नहीं है और नहीं उसके इन्द्रि (हवास) है और नहीं उसके बराबर और न अधिक है उस ईश्वर की शक्ति अनेक प्रकार की वेदों में बतलाई है उस का ज्ञान, बल, क्रिया, सब स्वभाविक है परमात्मा के संपूर्ण गुण स्वभाविक हैं उसमें कोई नैमित्तिक गुण नहीं है निदान जब कि परमात्मा का क्रिया करना स्वभाव है तो उससे जो काम होगा वह प्रत्येक समय होता रहेगा क्योंकि परमात्मा को अपने कार्य के वास्ते किसी साधन की आवश्यकता नहीं अतः उसके काम में कोई विघ्न नहीं होता, निदान परमात्मा के अनादि होने से उसका काम भी अनादि है क्योंकि उस काम से दो प्रकार का असर होता है जिसको सृष्टि और प्रलय कहते हैं क्योंकि दोनों में पहिले और पीछे किसी को नहीं कहसके अतः स्पष्ट प्रकट है कि सृष्टि प्रवाह से अनादि है ।

॥ ओ३म् शम ॥

भेज दिये जावेंगे जिस जगह १० ग्राहक होंगे उन का नित्य प्रति रवाना किये जावेंगे जिस ज़िले में १० मंसाजें १० ट्रैक्ट रोज़ाना लेनेवाले होंगे या जिस ज़िले में १०० ग्राहक रोज़ाना ट्रैक्ट के होंगे उस ज़िले को एक उपदेशक ट्रैक्ट सोसाइटी की ओर से बिना वेतन के दिया जायगा।

जिस ज़िले में २५० ट्रैक्टों के खरीदार होंगे उस ज़िले को एक उपदेशक और एक भजन मण्डली (बिना वेतन) के दीजावेगी प्रत्येक ग्राहक को ३० ट्रैक्टों का मय महसूल डाक ॥-) मासिक या ५॥॥) वार्षिक देना होगा और उपदेशक और भजन मण्डली का प्रबन्ध किसी समाज के आधीन किया जायगा। ट्रैक्ट नागरी उर्दू दोनों जबान में होंगे ग्राहकों को जिस जबान के लेने हों दरख्वास्त के साथ लिख देना चाहिये।

(४) जो मनुष्य १००) इस ट्रैक्ट सोसाइटी को दान देंगे, उनके नाम से १००००० एक लाख ट्रैक्ट छपाये जावेंगे जो गरीबों को बिना मूल्य और दूसरों को)। ट्रैक्ट के हिसाब से दिये जावेंगे जो मूल्य प्राप्त होगा वह ट्रैक्ट सोसाइटी का कोष (फण्ड) होगा या गुरुकुल ज्वालापुर में खर्च होगी और जो लोग २५) ट्रैक्ट सोसाइटी को दान देंगे उनके नाम से ५००० ट्रैक्ट भाषा में छपवाये जायेंगे और जो लोग ८ रुपये दान देंगे उनके नाम से १... देवनागरी ट्रैक्ट और ५ रुपये दान देंगे उनके

पुस्तक मिलने का पता—

महाविद्यालय

ज्वालापुर हरिद्वार

॥ ओ३म् ॥

ट्रैक्ट नम्बर १०

षट्शास्त्रों की उत्पत्ति का क्रम

जिस को

स्वामी दर्शनानंद सरस्वती जी ने

दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी के हितार्थ

महाविद्यालय मैशीन प्रेस

ज्वालापुर हरिद्वार में

छपवाया

—=+:※:+=—

४००० [प्रति [मूल्य)।

ओ३म्

षटशास्त्रों की उत्पत्ति का क्रम।

प्रियपाठक ! आजकल भारतवर्ष क्या प्रत्युत सारे संसार में शास्त्रों के प्रचार के न्यून होने से हमारे शास्त्रों के विरुद्ध बहुत से विषय प्रकाशित होरहे हैं - कुछ महाशय तो यह कहरहे हैं कि शास्त्रों के विषय एक दूसरे के विरुद्ध हैं कुछ लोग यह कहते हैं कि यह सांख्यसूत्र नहीं प्रत्युत यह तो विज्ञान भिक्षुका बनाया हुआ है—अनेक गौतम और कणादादि को नास्तिक और वेदविरोधी बतलाते हैं बहुत महाशय कपिल जीको अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक कहते हैं—अनेक मनुष्यों को इन-दर्शनों के विषय और क्रम में भ्रम है—प्रयोजन यह कि शास्त्रों के विषय में बहुत से संशय उन लोगों ने फैलाये हैं जिनको शास्त्रों के मुख्य अभिप्राय से सर्वथा अनभिज्ञता है और उन्होने विषयों के क्रमको न समझकर केवल शब्दों से अपने मनमाने विचार को पुष्ट किया है—बहुत लोगों नें शास्त्रों के विषय में नवीनग्रन्थों को जो शास्त्रों के मुख्य सिद्धान्तों से अनेकस्थलोंपर दूर निकलगये उनको शास्त्र मानकर उनके विरोध से शास्त्रों में

विरोधमान लिया है—अतएव हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि शास्त्रों के बारे में विचार आरम्भ करके मनुष्यों के चित्त से इस अयुक्त विचार को पृथक करने का प्रयत्न करें कि जिससे [illegible]
[illegible]
जतलाने वाले [illegible] प्राप्त होजावें और वह इससे लाभ उठावें यद्यपि हम अपने आपको इस योग्य नहीं समझते कि इस महान विषयको भली भांति विचार सकें और न यह कि सामाजिक कामों से इतना अवकाश है कि जिससे इस गंभीर विषय को पूर्णतया विचार सकें परन्तु तोभी परमात्मा का आश्रय ले जहांतक साध्य होगा हम अपने दरेकटों के काम से इस कर्त्तव्यको पूरा करनेका यत्न करेंगे ॥

प्यारे मित्रो ! सबसे प्रथम जबकोई मनुष्य किसी वस्तुको, ग्रहण करे अथवा उसको निकृष्ट ज्ञान बनाने का प्रयत्न करे इस बातकी आवश्यकता है कि वह उस वस्तु से भिन्न हो जावे कि जिससे भले, बुरे सत्य और असत्यका ज्ञान होजावे जब तक मनुष्यों को इस कसौटी का ज्ञान नहीं होता तबतक उस का सब काम अधूरा रहता है और जब मनुष्य इस कसौटी को प्राप्त कर लेता है उस समय वह उन वस्तुओं को परखना आरम्भ करता है जो उसको सामने आती है और वह उनका प्रत्यक्ष दशा में कार्य और कारण से अनुभव करता है और जिस समय उसको सम्पूर्ण रीति से ज्ञान जाता है तो वह उसको [illegible]

सुखानुसार आत्मा के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होनेका ज्ञान करदो भागों में विभाजित करता है जब भाग होगये तो अनुकूल से मेलकरना प्रारम्भ करता है और प्रतिकूल से वचता है जब वह अनुकूल भागसे प्रीति करता है तो उस के स्वभाव से जो अनकूल भागके मेल से उत्पन्न होगई थी उसे प्रतिकूल शक्ति यों से मिलने नहीं देती अतएव उसे प्रतिकूल स्वभाव के दवाने के हेतु अनुकूल शक्तियों को पैदा करना पड़ता है जब अनुकूल स्वभाव से प्रतिकूल को दवा लेताहै तव वह अनुकूल शक्तियों की खोज आरम्भ करता है जहां २ से वह मिलती हैं ग्रहण करना चला जाता है और उससे पूण सुख प्राप्त करता है ॥

प्यारे पाठको ! इसीसृष्टि क्रमके अनुसार वरावर हमारे ऋष चले है और उन्होंने छः दर्शनों में इन्ही छः प्रयोजनोंको जो मनुष्यों केमुख्य उद्देश्य के निमित्तआवश्यक हैं सिद्ध करादिया है प्रथम दर्शन न्याय दर्शन है जिसको महात्मा गौतम ऋषि ने वनाया है इसमें प्रमाण वादही पर विचार किया गया है और प्रमेय के सिद्धकरने के वास्ते जो २ प्रमाण आवश्यकीय हैं और जिन साधनों से विचार करने की आवश्यकता होती है और जिनकारणों से विचारों में त्रुटि आजाती है और जिन कारणों से ज्ञात होजाता है कि विचार पूरा होगया उनकी व्याख्याकी गई है और यह भी सूचित कर दिया गयाहै कि मनुष्य जीवन

का उसके मुख्य उद्देश्य पर पहुंचना बिना इन वस्तुओं के ज्ञान के असम्भव है और इसके निमित्त महात्मा गौतम ने १६ पदार्थों का ज्ञान आवश्यकीय समझा है–१ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४–प्रयोजन, ५–दृष्टान्त, ६–सिद्धांत, ७ अवयव, ८–तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२–वितंडा, १३–हेत्वाभास, १४–छल, १५–जाति, १६–निग्रहस्थान।

पाठक गण! जब इसप्रकार से महात्मा गौतम जी ने प्रमाणवाद को स्पष्ट करदिया तो महात्मा कणाद जी ने प्रमेयवस्तुओं का साधर्म्य और वैधर्म्य जतलाने के निमित्त वैशेषिक दर्शन बनाया इस दर्शन में महात्मा कणाद जी ने प्रमेय को छः भागों में बांट दिया १ द्रव्य, २–गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय। अब उन्होंने द्रव्य में ९ पदार्थ लिये अर्थात् १ पृथ्वी २ जल, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश ६ काल ७ दिशा ८ मन ९, आत्मा अर्थात् जीवात्मा व परमात्मा। इसी प्रकार २४ गुण बतलाये १ रूप २ रस, ३ गंध, ४ स्पर्श ५ संख्या ६ परिमाण, ७ पृथक्त्व, ८ संयोग, ९ विभाग, १० परत्व, ११ अपरत्व, १२ बुद्धि, १३ सुख, १४ दुःख, १५ इच्छा, १६ द्वेष, १७ प्रयत्न १८ गुरुत्व, १९ द्रवत्व २० स्नेह, २१ संस्कार २२ धर्म २३ अधर्म २४ शब्द

इसी प्रकार पांच तरह के कर्म हैं। १–उत्क्षेपण अर्थात् ऊपर उठना, २—अवक्षेपण अर्थात् नीचे गिरना ३–आकुंचन अर्थात् सुकुड़ना, ४–प्रसारण अर्थात् फैलना, ५–गमन अर्थात्

जाना और सामान्य विशेषादि बतला बडी योग्यता से प्रमेय वाद की व्याख्या करदी। प्यारे पाठको! जब इस प्रकार महात्मा गौतम और कणादादि अपने न्यायदर्शन और वैशेषिक को लिख कर चलेगये तब महात्मा कपिल जी आये उन्होंने कहा कि प्रमाण और प्रमेय का ज्ञान तो हो गया परन्तु गम्भीर विचारों में प्रत्येक पुरुष कृतार्थ नहीं हो सकता अतः दुःख और सुख जो दो गुण हैं उन के आधार की खोज करनी चाहिये जिस से तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्ति होजावे अब उन्होंने देखा कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक जड दूसरे चेतन अतएव उन्होंने प्रकृति पुरुष का पृथक् २ जानना मुक्ति का कारण बतलाया कारण यह कि वैशेषिक में बतला चुके थे कि साधर्म्य से सुख और वैधर्म्य से दुःख की प्राप्ती होती हैं इसी कारण चेतन जीवात्मा को चेतन और अचेतन का ज्ञान आवश्यक है उन्होंने सिद्ध किया कि जितना जगत् है उसका उपादान कारण प्रकृति है परन्तु प्रकृति जड और दुख देने वाली है अतएव उस के कार्य जगत् से जितनी प्रार्थना की जावेगी कुछ भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती इस लिये प्रकृति पुरुष का विवेक करने वाला सांख्य शास्त्र बतलाया और अच्छी प्रकार से अपने विषय को सिद्ध किया॥

पाठकवृन्द जब महात्मा कपिल इस प्रकार जड और चेतन को अलग २ बतलाकर चलेगये तब महात्मा पातंजलि ऋषि आये और उन्होंने कहा कि संसार में जिस कदर दुख हैं सब चित्त की वृत्तियों के विक्षेप से अर्थात् मन के विचारों के स्थिरत्न

होने से उत्पन्न होते हैं और प्रकृति के पदार्थों को मन जानकर आगे चले देता है जिस से चित्तवृत्ति एकाग्र नहीं होती और चित्त के एकाग्र न होने से सुख की प्राप्ति नहीं होती अतएव उन्होंने कहा कि योग करके चित्त की वृत्तियों को रोकना चाहिये क्योंकि संसार के समीप पदार्थों से चित्त की वृत्तिका अनुरोध नहीं होसकता अतः अनन्त परमेश्वर के साथ अथवा चैतन्य जीव आत्मा का परमात्मा के साथ योग होना चाहिये इस के लिये उन्होंने अंग नियत किये हैं ॥

१—यम २—नियम ३—आसन ४—प्राणायाम ५—प्रत्याहार ६—धारणा ७—ध्यान ८—समाधि ॥

इस प्रकार महात्मा पातंजलि ने अविद्या को दूर करके जड़ से प्रीति हटाकर चैतन्य परमात्मा से योग करके सुख की प्राप्ति का निश्चय करा दिया ॥

महाशयगण जब इस प्रकार महात्मा पातंजलि योग से चित्त की वृत्तियों के रोकने की आज्ञा देकर चले गये तो महात्मा जैमिनि जी महाराज आये उन्होंने कहा कि योग से चित्त के रोकने में जो बुरे कर्मों के संस्कार पैदा हुये अविद्या के संस्कार विघ्नकारक होंगे उन से कभी भी मन की वृत्तियां रुक न सकेंगी अतएव पहिले मन के मल रूपी दोष दूर करने के लिये शुभ नैमित्तिक कर्मों को करना चाहिये जिस से चित्त में दोष का लेप न रहे और मन का प्रवाह जो दुष्कर्मों की तरफ लग रहा है हट कर अच्छे कर्मों की तरफ लगावे फिर उस मल दोष के दूर होने के बाद विक्षेप के दूर करने के

साधन उपासना योग से काम चल जायगा उन्होंने व्रतदान इत्यादि बहुत से कर्म मल दोष के दूर करने के लिये बतलाये और उन की विधि अपने मीमांसा शास्त्र में अच्छे प्रकार से प्रकाशित करदी ॥

प्रियपाठको जब महात्मा जैमिनी जी महाराज ने अपने को इस भांति पर बयान कर दिया तब महात्मा व्यास जी ने कहा कि प्रमाण का भी ज्ञान होचुका और प्रमेय भी जान लिया और जड़ चैतन्य अर्थात् प्रकृति पुरुष को भी पृथक २ समझ लिया और योग करने का विचार भी ठीक है और योग में जो विघ्न पड़ेगा उन के रोकने के लिये मीमांसा शास्त्र के कर्म भी ज्ञात होगये परन्तु जिस चेतन के साथ योग करना है अभी तक उस को तो नितान्त जाना ही नहीं अतः ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये अतएव उन्हों ने वेदान्त शास्त्र बनाया जिस में केवल ब्रह्म के यथार्थरूप का ज्ञान होजावे उन्होने उस को इस प्रकार अरम्भ किया ॥

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा ।

अर्थ–प्रमाण प्रमेय, प्रकृति पुरुष और धर्मादि के पश्चात् ब्रह्म ज्ञान की इच्छा करते हैं जब उन से प्रश्न हुआ कि ब्रह्म क्या है तो उन्होंने उत्तर दिया ॥

जन्माद्यस्य यतः ।

अर्थ–जिस से इस सृष्टि की स्थिति और उत्पत्ति और नाश

होता है इस कारण सम्पूर्ण शास्त्र में ब्रह्मज्ञान बतलाया ॥

प्रियपाठक आप कहेंगे कि इन शास्त्रों के यह नाम किस प्रयोजन से हुवे और तुम जो कहते हो कि शास्त्रों का यह प्रयोजन है इस में क्या प्रमाण है इस का उत्तर यह है कि शास्त्रों के नाम यौगिक हैं और यह अपने २ विषय को प्रतिपादन करते हैं ॥ (१) न्याय का लक्षण यह है–

प्रमाणैरर्थ-परीक्षणमून्यायः ।

अर्थ—जिसमें प्रमाणों के द्वारा अर्थ अर्थात सुख दुःख के कारण की परीक्षा करना बतलाया हो उसे न्याय कहते हैं वैशेषिक जिसमें विशेष तौर पर साधर्म्य और वैधर्म्य को बतलाकर पदार्थों के यथार्थ ज्ञान को मुक्तिका सच्चा साधन बतलाया हो जिसमें संख्या की गई हो उसे सांख्य कहते हैं और योग के तो अर्थ चित्तवृत्ति के रोकने और मिलने के हैं और मीमांसा में मन के दोषों को दूर करने के लिये कर्म काण्ड है अब रहा वेदान्त इसका नाम इस प्रयोजन से रक्खा है कि वेद नाम है ज्ञान का और अन्त नाम है सीमा का अर्थात् ज्ञान की सीमा क्योंकि ज्ञान से बढ़ कर और कोई ज्ञान नहीं इस कारण ब्रह्मज्ञान बतलाने वाले शास्त्र को वेदान्त कहा दूसरे यजुर्वेद के अन्त के अध्याय में वेदान्त का मूल है जिसे ईश उपनिषद कहते हैं शेष उसका व्याख्यान है यह ईश उपनिषद वेद के अन्त में है इस वास्ते भी वेदान्त कहा

पाठक वृन्द हमारे बहुत से मित्र यह समझरहे हैं कि सब से पहला शास्त्र सांख्य है परन्तु यह कथन सर्वथा अयुक्त है क्योंकि सांख्य दर्शन में न्याय और वैशेषिक का प्रयोग किया है जैसा कि लेख है।

नवयमषटपदार्थ वादिनो वैशेषिकादिवत्।

अर्थ अविद्या वादी जो सांख्य शास्त्र में पूर्व पक्ष करता है वह कहता है हम वैशेषिककी तरह छेः पदार्थों के मानने वाले नहीं और यह भी कहा है कि सोलह और छः पदार्थों के ज्ञान से मुक्ति नहीं होती इसी प्रकार सांख्य दर्शन में बहुत से ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे प्रत्यक्ष विदित होजाता है कि सांख्य शास्त्र न्याय और वैशेषिक के पश्चात बना सांख्य दर्शन के आरम्भ में रखने से क्रम में सर्वथा भ्रम पड़जाता है अनेक महाशय उन शास्त्रों को विरोधी जानते हैं परन्तु यह मिथ्या है, वेद जो तत्व ज्ञान का मुख्य पुस्तक है प्रत्येक शास्त्र उस का एक अंग है जिस प्रकार प्रथम सीढ़ी के बाद दूसरी सीढ़ी तो ठीक मालूम होती है परन्तु तीसरी के बाद पहिली और दूसरी बिल्कुल बेढंग कहलाती है योरोपियन ग्रन्थ रचयताओं ने जिन को वास्तव में दर्शनों की फिलासफी का यथार्थ ज्ञान नहीं उन्होंने सांख्य दर्शन को प्रथम और कपिल को नास्तिक माना है परन्तु कपिल नास्तिक है या नहीं इस का जवाब तो हम दूसरे स्थान पर देंगे परन्तु सांख्य तीसरा शास्त्र

है इस के लिये हम विज्ञान भिक्षुका भाष्य जो सांख्यदर्शन पर है प्रमाण में देते हैं देखो भूमिका सांख्य भाष्य पृष्ठ २

तत्रश्रुतिभ्यः श्रुतेषुपुरुषार्थतद्धेतुज्ञानतद्विषयात्मस्वरूपादिषुश्रुत्यविरोधिनीरुपपत्ती। षडध्यायीरूपेण विवेकशास्त्रेणकपिलमूर्त्तिर्भगवानुपदिदेश। ननुन्यायवैशेषिकाभ्यामप्येतेष्वर्थेषुन्याय प्रदर्शित इति ताभ्यामस्यगतार्थं त्वंसगुणनिर्गुणत्वादिविरुद्धरूपैरात्मसाधक तयातद्युक्तिभिरिति । मैवम् । व्यावहारिक पारमार्थिक रूपविपयभेदन गतार्थत्वविरोधयोर भावात् ॥

अर्थ-श्रुति में जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्ति बतलाई है और उस का कारण आत्मा का

यथार्थ ज्ञान बतलाया है उस के लिये महात्मा कपिल ने छः अध्याय रूप वेदानुकूल युक्तियों की एकत्रता अपने शास्त्रों में लिखी अब वादी शंका करता है कि यह युक्ति से तत्वज्ञान न्याय व वैशेशिक में कहा गया है इस कारण यह उस में आ चुका है यदि किसी भाग में यह उन से विरुद्ध है तो युक्तियों के आपस में विरुद्ध होने से दोनों का ही प्रमाण मुशकिल होगा। विज्ञान भिक्षु उत्तर देता है कि ऐसा मत कहो कारण यह कि व्यावहारिक और पारमार्थिक रूप विषय का भेद है अतएव न तो सांख्य का विषय न्याय और वैशेशिक में आगया है और न उन का विरोध ही है॥

प्रिय पाठक! आपने समझ लिया होगा कि विज्ञानभिक्षु जिसने कई दर्शनों का टीका किया है और वर्त्तमान काल के पंडित उस को प्रामाणिक मानते हैं वह भी इस पक्ष की पुष्टि करता है कि न्याय वैशेपिक प्रथम के हैं जैसा कि सांख्य-दर्शन के मूल में न्याय वैशेपिक का कथन किया गया है है और टीका कार विज्ञानभिक्षु भी उन को सांख्य से प्रथम का मानता है फिर कुछक महाशयों का कथन कि जो दर्शनों के मत से अनभिज्ञ हैं किस प्रकार प्रमाणिक हो सकता है॥

बहुधा लोग यह कहते हैं कि यह सांख्य दर्शन कपिल का बनायाहुआ नहीं प्रत्युत तमाम सांख्य सूत्र जो कि कपिल जी ने केवल तत्व की व्याख्याके निमित्त बनाये हैं वह सांख्य सूत्र है और यह विज्ञान भिक्षु के बनाये हुये हैं परन्तु उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं होसकता क्योंकि इसी सां-

है इस के लिये हम विज्ञान भिक्षुका भाष्य जो सांख्यदर्शन पर है प्रमाण में देते हैं देखो भूमिका सांख्य भाष्य पृष्ठ २

तत्रश्रुतिभ्यः श्रुतेषुपुरुषार्थतद्धेतुज्ञानतद्विषयात्मस्वरूपादिषुश्रुत्यविरोधिनीरुपपत्ती। षडध्यायीरूपेण विवेकशास्त्रेणकपिलमूर्त्तिर्भगवानुपदिदेश। ननुन्यायवैशेषिकाभ्यामप्येतेष्वर्थेषुन्याय प्रदर्शित इति ताभ्यामस्यगतार्थत्वंसगुणनिर्गुणत्वादिविरुद्धरूपैरात्मसाधक तयातद्युक्तिभिरिति । मैवम् । व्यावहारिक पारमार्थिक रूपविषयभेदन गतार्थत्वविरोधयोरभावात् ॥

अर्थ-श्रुति में जो मनुष्य जीवन का उद्देश्य तीन प्रकार के दुःखों की निवृत्ति बतलाई है और उस का कारण आत्मा का

यथार्थ ज्ञान बतलाया है उस के लिये महात्मा कपिल ने छः अध्याय रूप वेदानुकूल युक्तियों की एकत्रता अपने शास्त्रों में लिखी अब वादी शंका करता है कि यह युक्ति से तत्वज्ञान न्याय व वैशेशिक में कहा गया है इस कारण यह उस में आचुका है यदि किसी भाग में यह उन से विरुद्ध है तो युक्तियों के आपस में विरुद्ध होने से दोनों का ही प्रमाण मुशकिल होगा। विज्ञान भिक्षु उत्तर देता है कि ऐसा मत कहो कारण यह कि व्यावहारिक और पारमार्थिक रूप विषय का भेद है अतएव न तो सांख्य का विषय न्याय और वैशेशिक में आगया है और न उन का विरोध ही है॥

प्रिय पाठक! आपने समझ लिया होगा कि विज्ञानभिक्षु जिसने कई दर्शनों का टीका किया है और वर्तमान काल के पंडित उस को प्रामाणिक मानते हैं वह भी इस पक्ष की पुष्टि करता है कि न्याय वैशेषिक प्रथम के हैं जैसा कि सांख्यदर्शन के मूल में न्याय वैशेषिक का कथन किया गया है है और टीका कार विज्ञानभिक्षु भी उन को सांख्य से प्रथम का मानता है फिर कुछक महाशयों का कथन कि जो दर्शनों के मत से अनभिज्ञ है किस प्रकार प्रमाणिक हो सकता है॥

बहुधा लोग यह कहते हैं कि यह सांख्य दर्शन कपिल का बनायाहुआ नहीं प्रत्युत तमाम सांख्य सूत्र जो कि कपिल जी ने केवल तत्व की व्याख्याके निमित्त बनाये हैं वह सांख्य सूत्र है और यह विज्ञान भिक्षु के बनाये हुये हैं परन्तु उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं होसकता क्योंकि इसी सां-

ख्य के सूत्रों को पेश करके बहुत से लोगों ने सांख्य को नास्तिक या अनीश्वर वादी सिद्ध करनेका यत्न किया है अगर यह सूत्र न हो तो कपिल जी को कोई नास्तिक कहही नहीं सक्ता था केवल इन सूत्रों में इस सूत्र को देख कर लोगों को भ्रम होगया।

ईश्वरासिद्धे।

अर्थ—ईश्वर की सिद्धि नहीं होती क्योंकि ईश्वरमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो होही नहीं सकता क्योंकि यह इन्द्रियों का विषय नहीं और प्रत्यक्ष इन्द्रियं जन्य होता है जिसका तीन काल प्रत्यक्ष नहो उसका अनुमान भी हो नहीं सकता क्योंकि अनुमान ज्ञान व्याप्ति यानी संबन्ध से होता है और जिसका तीन काल मे प्रत्यक्ष नहीं उसकी व्याप्ति होही नहीं सकती रहा शब्द सो यह आप्त के होने से प्रमाण होता है और आप्त कहते हैं जो धर्म्म से धर्म्मी का ज्ञान प्राप्त करके उपदेश करे—ईश्वर के परोक्ष न होने से उसके धर्म्म का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता अतएव ईश्वर में कोई प्रमाण नहीं और प्रमाण के न होने से उसकी सिद्धी सांख्य के माने हुये प्रमाणों से नहीं होसक्ती।

प्रिय पाठको अब आप समझ गये होंगे कि दर्शनों का यह क्रम है गोतम का न्याय दर्शन १— कणादि का वैशेषिक दर्शन २—कपिल का सांख्य दर्शन ३—पातंजलि का योग दर्शन ४—

जैमिनि का मीमांसा दर्शन५—व्यास का वेदान्त दर्शन ६—य
सिद्धान्त तो आज तक के विद्वानों का चला आया है ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

॥ ओ३म् ॥

श्राद्धव्यवस्था

जिस को

स्वामी दर्शनानंद सरस्वती जी ने

दयानन्द टंकट सोसाइटी के हितार्थ

महाविद्यालय मैशीन प्रेस

ज्वालापुर हरिद्वार में

छपवाया

२००० [प्रति [मूल्य)।

ओ३म्

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गौशाला, आर्टस्कूल; इत्यादि उपस्थित हैं ॥

ओ३म्

श्राद्धव्यवस्था

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा

अर्थ—हे ज्ञानस्वरूप अग्ने परमात्मा ! जिस मेधा नामक धारणावती बुद्धि को देवगण अर्थात् विद्वान् लोग प्राप्त हैं और जिस को प्राचीन ऋषि, मुनि प्राप्त थे आप उस धारणावती बुद्धि से हम को बुद्धिमान् कीजिये ॥

धर्माधर्म के विचारने में समर्थो ! सत्यशीलो ! वेदादि सत्य शास्त्रों को मानने वालो ! वर्णाश्रमी धर्म के सहायको ! आप लोग, थोड़े काल के लिये संसार के संस्कारों को अलग करके सत्यासत्य विचार करने वाली बुद्धि की कसौटी को हाथ में लेकर अपने नित्य नैमित्तिक व्यवहारों को जांचो और संसार की प्रणाली से जगत्कर्त्ता की महिमा को स्वाभाविक गुणों के अनुसार खोज करो विचार कर देखो ईश्वर ने कैसे २ उत्तम नियम तुम्हें दुःखों से छुडाने को बनाये हैं कैसी २ उत्तम २ वस्तुयें तुम को जगत् रूपी शत्रु से बचने

की दी है परमात्मा के नियमों को ध्यान दो परमात्मा ने जगत् में जब जीव को उत्पन्न किया तो साथ ही उस अल्पज्ञता को देख कर माता पिता के हृदय में प्रीति उत्पन्न करदी जिस से यह असमर्थ जीव सहायता पाकर समर्थ होजावे और ईश्वर के नियम को पलटे के नाम से उसने प्रचार किया है संसार के लोग भली भांति जानते हैं जो बीज भूमि में संसार में डाला जाता है वह बीज थोडे दिनों के पश्चात् बहुत गुणा होकर मिलता है जड भूमि भी दिये हुवे बीज का पलटा देती है और बीज के लगाने में जो कष्ट हुआ है उस के प्रतिफल में दिये हुवे बीज से कई गुणा बीज लौटाया जाता है इसी प्रकार जो जल सूर्य की किरणों को भूमि समर्पण करती है सूर्य उस के पलटे में उस की पुष्टि वाष्प द्वारा करते हैं जिस पशु को मनुष्य अन्नादि से पालन करता है वह पशु उस की सेवा करके उस को पलटा देता है जिस कुत्ते को दो दिन टुकडा डाल दो वह उस के बदले उस के घर की रखवाली करता है इसी भांति संसार के जड चैतन्य पदार्थ पलटे के नियम से बधे हुये हैं प्यारे पाठको! जब मनुष्य को माता पिता संसार में असमर्थावस्था से पालन करके समर्थावस्था को पहुचा देते हैं अज्ञान के गर्त्त से निकाल कर ज्ञान के शिखर पर बिठा देते हैं माता पिता स्वयम् लाखों दुःख उठाकर पुत्र को सुख देने का यत्न दिन रात करते हैं माता गर्मी के दिनों में जब आग बरसती है पुत्र को पंखा डुला

कर सुलाती है शरदी के दिनों में जब विस्तर पर बालक मूत ता है आप उस गीले स्थान पर लेटती है पुत्र को अच्छे स्थान पर सुलाती है यह क्या ही सच्चा प्रेम है गूढ दृष्टि से देखिये क्या ही ईश्वरकी माया का विचित्र चमत्कार है कि पिता अपने जीवन में कष्ट पाकर जो कमाता है वह बालक के पालन पोषण और संस्कारों के करने पढाने विवाहादि कार्यों में खर्च कर देता है जो कुछ बच रहता है उस का भी पुत्र को मालिक बना देता है क्या ही मोहजाल है कि सारी आयु उस के निमित्त लगा देता है । क्या इस का पलटा मनुष्य को न देना चाहिय जब भूमि आदि जड़ पदार्थ संसार में पलटा देते हैं तो मनुष्य को चैतन्य होकर पलटा न देना चाहिये ? जब कुत्ते आदि नीच योनि के जीव कृतघ्नता नहीं करते तो क्या मनुष्य को यह उचित है कि जिन माता पिता ने लाखों कष्ट उठाये हैं यह उन का पलटा न दे ॥

यदि आप विचार कर के देखेंगे तो अवश्य कहेंगे कि मनुष्यको अवश्य पलटा देना चाहिये जैसे माता पिता प्रीतिवश पुत्रका कष्ट मिटाते हैं पुत्रको श्रद्धासे उसका पलटा देना चाहिये भारतवर्षके लोग जो सनातनसे आर्य्यधर्मको मानते चले आते हैं यह आर्य्यधर्म ईश्वरीय विद्या अर्थात् वेदोंके अनुकूल सदा चला आता है वेदों मे उस पलटेका नाम जो पुत्रको माता पितादिके निमित्त करना चाहिये पितृश्राद्धके नामसे कथन कि-

या है। हे आर्य्यवर्त्तवासियो! आप के बड़े ऋषि मुनि सनातन से श्राद्ध करते हैं परन्तु भारतमें मतविवादके फैलनेसे यह रीति कुछ पलट गई है अब इस छोटेसे पुस्तक में प्रश्नोत्तरमें पौराणिक और आर्य्यसामाजिक के विचार से इसका तत्व दिखलाते हैं॥

एक रोज एक पौराणिक महात्मा एक बनियेकी दूकान पर बैठे स्वामी दयानन्दजी को बुरा भला कहकर बनियेको समझा रहे थे कि आर्य्यसामाजी पितरों का श्राद्ध नहीं करते मुंहसे कहते हैं हम वेदको मानते हैं परन्तु वेदमें लिखे श्राद्धको कभी नहीं करते यह नास्तिक हैं इन के दर्शन करनेमें पाप है इत्यादि —उस समय एक आर्य्यसामाजिक भी आ निकले उन्होंने यह बातें सुनकर कहा क्यों महाराज! झूठ बोलते हो यदि आपको अपने पक्ष की सत्यता पर भरोसा हो तो शास्त्रार्थ करके निर्णय कर लीजिये। पौराणिक ने कहा अच्छा शास्त्रार्थ होजाय, तुम कुछ पढ़े भी हो! इसके पश्चात् प्रश्नो त्तर होने लगा॥

(आ०) कहो महाराजजी पितृकर्म नित्य है या नैमित्तिक? ।

(पौ०) यह नित्यकर्म है।

(आ०) तो महाराज सब को रोज करना चाहिये?।

(पौ०) हां रोज करना चाहिये न बन पड़े तो वर्ष भरमें १५ दिन पितृपक्ष के और जिस दिन पितर मरे हों॥

(आ०) महाराज जिसके पितर जीते हों वह किस दिन करे ?

(पौ०) उसको करनेका अधिकार नहीं वह न करे॥

(आ०) तो महाराज जो मनुष्य के वास्ते पञ्चयज्ञ करना नित्यकर्ममें लिखा है वह न करे ?

पौराणिक और यज्ञ तो करले परन्तु पितृयज्ञ उसके पितादि कर लेंगे ॥

आर्यसामाजिक तो महाराज बाकी चार यज्ञ भी वही कर लेंगे ?

पौराणिक नहीं बाकी ज़रूर करना चाहिये।

आर्यसामाजिक महाराज ! जब एकांश छोड़नेका दोष न होगा तो सर्वांश छोड़नेकाभी दोष नहीं ?

पौराणिक सन्ध्यादि कर्मकरले बाकी मातापिताने कर लिये ?

आर्यसामाजिक तो क्या पुत्रके किये पिताको और पिताके कियेसे पुत्रको फल होसकता है ?

पौराणिक हां भाई होता है तभी तो संसार करता है।

आर्यसामाजिक क्या महाराज पितरोंका मरे पर श्राद्ध हो, जीते जी नहीं ?

पौराणिक हां भाई मरे हुये पितरोंका श्राद्ध होना चाहिये क्योंकि जीते जी तो वह स्वयम् खा पी लेते हैं जब मरने के पश्चात् पितृलोकमें उनको भूख लगती है तो पुत्रका दिया अन्न

उनसे मिल जाता है इस कारण उनके मरनेके पश्चात् ब्राह्मणों को खिलाये ॥

आर्यसामाजिक महाराज सब लोग मर कर पितृलोकको जाते हैं चाहे वह धर्मात्मा हो वा पापी सब एक स्थलमें जावें यह अन्याय है और आप यह बतायें कि पितृलोकमें पितर् कब तक रहते हैं ?

पौराणिक इसका काल तो ठीक ज्ञात नहीं पण्डितोंसे सुने है सैकड़ों वर्ष तक रहते हैं।

आर्यसामाजिक जब आपको ज्ञात नहीं कि वह कब तक रहेंगे तो आप उनको बिना जाने क्यों माल भेजते हैं ?

पौराणिक इसमें कुछ हानि नहीं जब तक पितृलोग वहां रहेंगे उनको पहुंचेगा पश्चात् हमारा पुण्य होगा ॥

आर्यसामाजिक कहिये तो मरनेके साथ जीवितोंका सम्बन्ध बना रहता है ?

पौराणिक हां सम्बन्ध बना रहता है ॥

आर्यसामाजिक तो मरनेके रोज़ जो लोग तिनका तोड़कर कहते हैं कि जिसने किया उसको मिले या जैसा करता है वैसा फल पाता है ॥

पौराणिक यह समाजका व्यवहार है।

आर्यसामाजिक महाराज पिता पुत्रका सम्बन्ध जीवमें रहता है या शरीरमें या जीव और शरीर विशिष्टमें ?।

पौराणिक जीव और शरीरविशिष्टमें।

आर्यसामाजिक जब जीव और शरीर विशिष्टमें पिता पुत्रका सम्बन्ध रहता है तो जब शरीर नष्ट हो गया जीव अलग हो गया उस समय सम्बन्ध तो न रहा जब सम्बन्ध न रहा तो उसका नाम पितृश्राद्ध कैसे होगा ?

पौराणिक क्या जो श्राद्ध वेदोंमें लिखा है वह झूठ होसकता है ?

आर्यसामाजिक क्या वेदोंमें मरे हुये पितरोंका श्राद्ध लिखा है॥

पौराणिक क्या जीतेका भी श्राद्ध होता है ?।

आर्यसामाजिक श्राद्ध तो जीतोंका ही होता है और जीतोंका ही सम्बन्ध है।

पौराणिक इसमें क्या प्रमाण है ?

आर्यसामाजिक इसमें ईश्वरका सृष्टि नियम और तुम्हारा तीन पीढ़ीके पितरोंका श्राद्ध करना ही प्रमाण है ?।

पौराणिक इसमें ईश्वरका सृष्टि नियम किस प्रकार से प्रमाण है ?

आर्यसामाजी देखो बालपनमें जब पुत्र असमर्थ था तबमाता पिताने पाला रक्षा की इसी प्रकार जब वृद्धावस्थामें मातापिता असमर्थ होते है तबपुत्र अपने धर्मके अनुसार श्रद्धा पूर्वक उनका सेवन करे।

पौराणिक क्या पितरों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करने का नाम नाम श्राद्ध है और वह जीते पुरुषों का होना चाहिये इस में क्या प्रमाण है ?

आर्यसमाजी तुम्हारा तीन पीढ़ी के पितरों का श्राद्ध करना औरों का न करना ॥

पौराणिक–इस से क्या जीते हुये पितरों का श्राद्ध सिद्ध होता है ॥

आर्यसमाजी–हां ठीक २ यह हमारे पक्ष को सिद्ध करता है

पौराणिक–किस प्रकार करता है ? युक्ति तो बताओ ॥

आर्यसमाजी–देखो वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की लिखी है और २० वर्ष तक न्यून से न्यून विवाह करना लिखा है तो कमसे कम २६ वर्ष में पुत्र और ५२ में पौत्र ७८ में प्रपौत्र हो सकता है अब जब तक इसके पुत्र हों तब तक उसका प्रपितामह अर्थात् परदादा मर गये इस का परपोता अपने पिता पितामह, वृद्ध पितामह तीन पुश्त वालों का श्रद्धापूर्वक सेवन कर सकता है और इससे पञ्चमहायज्ञ जो कि नित्यकर्म हैं सब सक्ते हैं और इस पर भी निश्चय प्रतीत होता है कि जितने समय तक एक पुरुष अपने पितरों का सेवन कर सकता है इस में पितृ लोक में जो पापी और पुण्यात्माओं के एक सग रहने से ईश्वर के न्याय में दोष आता है वह भी न रहेगा ॥

पौराणिक—तुम्हारी इन बातों से तो गरुड़पुराण झूठा प्रतीत होता है क्या व्यास जी का बनाया झूठा हो सकता है ?

आर्यसमाजी –तुम्हारे गरुडपुराण का मिथ्या होना तो उस

की बातों से स्वयम् सिद्ध ही है और कृष्ण जी की बनाई गीता और गौतम ऋषि के बनाये न्यायदर्शन के देखने से यह सर्वथा मिथ्या प्रतीत होता है ॥

पौराणिक—क्योंकर मिथ्या है ? जरा कहो !

आर्यसमाजी–सुनो तुम्हारे गरुड़ पुराण में लिखा है कि जब जीव मरताहै तब यमके दूत उसको लेने आतेहैं और फिर लिखा है वैतरणी नदी के किनारे तक पहुंचाते हैं जिस के पुत्र वैतरणी पार कराने को गोदान कर देते हैं वह पार जाता है नहीं तो नदी में डूब जावे। भला यदि कोई पूछे महाराज यम के दुत निकम्मे हैं क्या जिस को यमद्वार में लेजाने को वह आये थे वह नदी में डूब जावे तो फिर यम के दूत क्यों आये थे और जो यहां नदी में डूब जावें वह तो यम के दूतों के संग यमलोक जावें वैतरणी में डूबकर कहां जाना होगा क्योंकि जीव तो नित्य है और नदी आदि में शरीर डूबता है सो तो यहां फूंक दिया गया हमारे बहुत से भोले भाई यह कह देंगे कि दश गात्र करने से दश रोज़ में शरीर त्यार होजायगा परन्तु दश रोज तक जीव कहां रहेगा और जो लोग वन में मृत्यु पाते हैं उन का दशगात्रादि कभी कुछ नहीं हुआ वह कहां जायेंगे ? हमारे पौराणिक भाई कहेंगे कि वह प्रेत होगा परन्तु उन से प्रेतभाव पूछा जावे तो वह योनि बता देंगे परन्तु गौतम ऋषि के सूत्र से–

दयानन्द ट्रेक्ट सोसाइटी के सामान्य नियम

१—इस टरेक्ट सोसाइटी का आशय ऋषि-दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार करना और वेद मन्त्रों के शब्दों को सरल भाषा में व्याख्या करके और दर्शनों के प्रत्येक सूत्र पर एक टरेक्ट लिख कर उन के आशय को अच्छी तरह समझा कर आर्य पुरुषों को इस लायक बनाना है कि वह वैदिकधर्म के विरोधी के मुकाबले में स्वयं काम चला सकें बाहर से सहायता की आवश्यकता न रहे ॥

२—यह टरेक्ट सोसाइटी एक वर्ष में १६ पृष्ठ के ॥ वाले ३६० टरेक्ट प्रकाशित किया करेगी जिस में वेद मन्त्रों की व्याख्या एक

टरेक्ट में एक मन्त्र १२५ दर्शनों के सूत्रों की व्याख्या। एक टरेक्ट में एक सूत्र १२५ आर्य सिद्धान्तों पर विचार २५ टरेक्ट (मुख़ालिफ़ान) वैदिकधर्म के जवाब में ७५ आर्यसमाज के सुधार पर १० टरेक्ट ॥

३–जो मनुष्य इस टरेक्ट सोसाइटी के ग्राहक बनकर सहायता देंगे उन को १० दिन के पीछे इकट्ठे १० टरेक्ट)॥ के टिकट में भेजदिये जावेंगे जिस जगह १० ग्राहक होंगे उन को नित्य प्रति रवाना किये जावेंगे जिस जिले में १० समाजें १० टरेक्ट रोज़ाना लेने वाले होंगे या जिस जिले में १०० ग्राहक रोज़ाना टरेक्टके होंगे उस जिले को एक उपदेशक टरेक्ट सोसाइटी की ओर से विना वेतन के दिया जायगा ॥

जिस जिले में २२५ टरेक्टों के खरीदार होंगे उस जिले को एक उपदेशक और एक भजन मण्डली (बिला वेतन) के दीजावेगी प्रत्येक ग्राहक का ३० टरेक्टों का मये महसूल डाक ॥﹀) मासिक या ६॥।) वार्षिक देना होगा और उपदेशक और भजन मण्डली का प्रबन्ध किसी समाज के आधीन किया जायगा टरेक्ट नागरी उर्दू दोनों जबानो में होंगे ग्राहकों को जिस जबान के लेने हों दरख्वास्त के साथ लिख देना चाहिये ॥

४—जो मनुष्य ५००) इस टरेक्ट सोसाइटी को दान देंगे उन के नाम से १००००० एक लाख टरेक्ट छपाये जावेंगे जो गरीबों को बिना मूल्य और दूसरों को)। टरेक्ट के हिसाब

जे दिये जावेंगे जो मूल्य प्राप्त होगा वह टरेक्ट सोसाइटी का रुपय फन्ड होगा या गुरुकुल ज्वालापुर में खर्च होगा और जो लोग २५) टरेक्ट सोसाइटी को दान देंगे उनके नाम से ५००० टरेक्ट भाषा में छपवाये जायेंगे और जो लोग ८) रुपये दानदेंगे उनके नाम से एकहजार देवनागरी टरेक्ट और ७) रुपय दानदेंगे उन के नाम से एक हजार उर्दू टरेक्ट प्रकाशित किये जायेंगे धर्मप्रचार से इज्जत बढ़ाने का अवसर इस से उत्तम नहीं मिलेगा ॥

५ जो महाशय इस टरेक्ट सोसाइटी के एजेण्ट होना चाहें उन्हें २०) फीसदी कमीशनदिया जायगा हर एक दरख्वास्त मैनेजर महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार के पते से आनी चाहिये ॥

ओ३म्

ट्रेक्ट नम्बर ५

अविद्या का प्रथम अंग

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने रचा और

प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रेक्ट सोसाइटी ने

महाविद्यालय मेशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रेक्टसोसाइटी

(दफ्तर) पुलिस के सामने

बाजार हरिद्वार.

२००० प्रति] [मूल्य ३ पाई.

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गोशाला, आर्टस्कूल; इत्यादि उपस्थित हैं ॥

॥ ओश्म् ॥

अविद्या का प्रथम अंग ।

विद्याञ्चा विद्याञ्च यस्तद्वेदोभयᳪसह ।
अविद्याया मृत्युतीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

प्यारे भ्रातृ वर्ग इस वेद मन्त्र में परमात्मा जीवों को इस बात का उपदेश देते हैं कि जो जीव अविद्या और विद्या अर्थात् दुःख और सुख के कारण को एक समय में जानता है वह अविद्या के ज्ञान से मृत्यु को तरकर विद्याके ज्ञान से अमृत अर्थात् मोक्ष (निजात) को प्राप्त करता है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि अविद्या जो दुःख का कारण है वह क्या वस्तु है इसका लक्षण महात्मा पतञ्जलि ऋषि ने यह किया है कि–

अनित्याऽशुचिदुःखाऽनात्मसुनित्या ।
शुचि सुखात्माख्यातिर विद्या॥ यो० पा० ९

अर्थ अनित्य पदार्थों को नित्य जानना अविद्या का प्रथम लक्षण है जैसे यह शरीर नाश वाला है अथवा यह जगत् जो विनाश वाला है, इसको सर्वदा स्थित रहने वाला मानना अविद्या है क्यों कि यदि जीव इस शरीर को नित्य (अ-दि) न जाने तो उस के पालने के वास्ते बड़े २ पाप कर्म न करें अस्तु जिस मनुष्य को यह निश्चय होजाता है कि मैं ऐसा सगय मे [illegible]

बढ़ाता है क्यों कि संसार के संपूर्ण कार्य आशा से सहारेपर होते हैं, जब आशा की निवृत्ति हुई तब वही कार्य कोई नहीं करसक्ता जब तक मनुष्यों को यह आशा रहती कि यह लड़के और स्त्री मुझे सुख देंगे तब ही तक यह कितने प्रकार के असत्य वाक्य (झूठ) बोलकर और विश्वास घात करके रुपया इकट्ठा करता है यदि उस का इस श्लोक पर विश्वास होता तो यह कार्य नहीं करसकता जैसे भक्त कबीर ने कहा है ॥

अनित्यानिशरीराणीविभवोनैव शाश्वतः।
नित्यसन्निहितोमृत्युःकर्तव्योधर्म संग्रहः॥

प्राचीन ऋषि हमारे सामने इस जगत् से चले गए हैं हमारे जाता पिता और भाई भी यहां से चल दिये हैं शेष भी चले जारहे हैं, पुनः किस प्रकार आशा होसकती है कि यह हमारा शरीर सर्वदा रहने वाला है, यदि नहीं तो इसके वास्ते आत्मा के बल को नाश करने से क्या लाभ है जब ऋषी मुनी और देवताओंके शरीर ही स्थित न रहे तो हमको अपने शरीर के नित्य रहने की आशा रखना सरासर अविद्या के घर में वास करना है, यह प्राकृत पदार्थ धनादि भी (हमेशा) सर्वदा रहने वाले नहीं हैं लाखों राजा महाराजा इस पृथ्वी परसे चलेगए और प्रत्येक की बुद्धि में यह निश्चय होगया था कि मैं इस संसार का राज्य भोगने के वास्ते हूं और मैं इस जगत् का स्वामी (मालिक) हूं और संसार के सारे पदार्थ मेरे भोग के वास्ते हैं परन्तु आज उनका नाम निशान भी दृष्टि गोचर नहीं होता इतनाही नहीं औरंगजेब जैसे बादशाहों की खबरों का भी पता नहीं मिलता. वह जगत को तो विचारे क्या भोगते-किन्तु आपही भोगगए. संसार की वैसी की वैसी संपूर्ण वस्तु स्थित हैं, परन्तु वह जगत को अपना मानने वाले नहीं रहे-

नही आज दुनिया में कोई उनकी प्रतिष्ठा है कारूं ने लक्षों कोस (खजाने) इकट्ठे किए परन्तु आज नतो कारूं का पता मिलता है और ना उनके वह कोश दीखते हैं जब कि कारूं जैसे मनुष्यों के साथ धनादिक संसारिक पदार्थों ने मित्रता

छोडदी तो आजकल छोटे २ राजे रईस धनिये-सेट साहूकार दो चार लाख के विश्वास से संपूर्ण ऐश्वर्यता को तुच्छ समझते है-इससे क्या आशा रखसक्ते हैं—जिन नव युवकों (नौ जवानों) की बुद्धि में धनादिक सांसारिक पदार्थ सबसे प्यारे हैं उनको चाहिये कि वह अपने दादा परदादा की अवस्था पर विचार करें-कि उनके साथ इस माया ने (दौलत ने) कैसा वर्ताव किया जिस माया को उसने हजारों पाप करके उपन्न किया था इस मरते समय उसको कुछ लाभ नहीं पहुंचासक्ती है हम मन जाओ इस देहली की अवस्था पर विचार करो—कि एक समय यह देहली इन्द्र प्रस्थ के नाम से प्रसिद्ध (मशहूर) थी-युधिष्ठिर जैसा धर्मात्मा यहां राज्य करता था जिसके अर्जुन जैसे तीरअन्दाज भ्राता थे अभिमन्यु जैसे बलवान भतीजे थे-भीमसेन जैसे बलवान गदाधारी योद्धा जो कटिबद्ध होकर उसके पसीने के स्थान में अपना रक्त [खून] बहाने को तैयार रहते थे कृष्ण जैसे योगीराज उनकी सहायता के लिये कटिबद्ध थे यह युधिष्ठिर जिसने राजसू यज्ञ किया संपूर्ण संसार के राजाओं पर राज्य किया फिरंग [यूरप] पाताल [अमरीका] और एशिया के कुल मुल्कों के शिरताज होते हुये अपना सिक्का चलाया जिसका वर्णन विस्तार पूर्वक महाभारत में किया है जिसने अश्वमेध यज्ञ किया जिसकी आज्ञा में लाखों मनुष्यों की सेना रही अर्थात् बहुतसी अक्षौहिणी सेना रहती थी

बडे २ महारथी और शस्त्रधारी जिसके भ्राता हों। भला आज कोई बतासक्ता है कि देहली में उसका कोई चिन्ह मिलना है आज एक छोटासा मनुष्य भी उसकी आज्ञा को नहीं मानता किन्तु कोई भी नहीं जानता कि युधिष्ठिर का गृह देहली के किस महल्ले में था युधिष्ठिर के पीछे बहुत से राजे महाराजे हुवे जिन्हों ने इसको अपना समझा परन्तु यह देहली किसी की नहीं हुई युधिष्ठिर ने कौरवों से लडाई की संपूर्ण वंश का नाश किया हा! आर्यावर्त्त के भीष्मपितामह जैसे उसकी सहायता के लिये मारे [कतल किये] गए द्रोणाचार्य जैसे शस्त्र विद्या के गुरु मारेगए परन्तु क्या देहली युधिष्ठिर की हुई नहीं जिस युधिष्ठिर ने देहली के लिये इतना श्रम उठाकर हजारों रक्त [खून] बहाकर बडे २ दुःख उठाए सारे वंश का नाश किया परन्तु इतने पर भी देहली उसकी न हुई भला जब इतनी आपत्तियों के उठाने से भी देहली युधिष्ठिर की नहीं हुई तो उसके आदेशों [जानशीनों] को उससे क्या आशा होसक्ती थी सब राजे नश्वरवार देहली को अपना २ कहते हुवे चलेगए परन्तु यह किसी की ना हुई किसी मूर्ख को यह स्मरण ना हुवा कि संसार तो आज तक किसी का हुवा ही नहीं पुनः हम उसमें अपना अहङ्कार रखकर उसके वास्ते वंश का नाश करने का कलंक क्यों लें यदि वंश का जगत् के अन्दर होने से उसकी कुछ परवाह न करो तो धर्म का क्यों नाश करे हो! अविद्या तेरी महिमा अपार है जब युधिष्ठिर जैसे सभ्य पुरुषों

को तैने फसालिया-तो आजकल के निर्बुद्धि मनुष्यों का तो कहना ही क्या है केवल युधिष्ठिर ही तेरे जाल में नहीं फँसा किन्तु उसके संपूर्ण अनुयाई तेरी भृत्यता [गुलामी] का भार शिरपर लेकर चलेगये कुछ कालान्तर के पश्चात् महाराजा पृथ्वीराज इस देहली के मालिक हुये जिन्होंने क्षत्रियधर्म के अनुसार राज्य किया धर्मवीर पृथ्वीराज भी कुछ दिवस पर्यंत देहली को अपना कहता रहा परन्तु उसकी ना हुई अपने भ्राता जयचन्द्र से युद्ध में विजय पाकर हजारों शूर वीरों के शिर कटाकर भी देहली पृथ्वीराज की न रही।

सिंह ने पृथ्वीराज का विश्वास घात किया। कुंवर कल्याण सिंह को धोके से मारडाला संपूर्ण क्षत्रिय सेना को मिटाकर आर्यावर्त्त (हिंदुस्तान) को यवनो का सेवक बनाया, क्या यह दिल्ली विजयसिंह की हुई नहीं जी—जिस शहाय उद्दीन मुहम्मद गोरी ने लाखों मनुष्यों के रक्त बहाकर पृथ्वी-राज को छल और कपटों से विजय करके अपनी संपूर्ण प्रतिज्ञा

को भंगकर धर्म की परवाह नहीं की, अपन्थिवत्- (लामज हवों की तरह) राक्षसता का झण्डा उठाया क्या देहली उस को हुवी नहीं जब कि यह देहली इतने २ कष्टों से भी अपनी नहीं हुवी तो अब जो मनुष्य थोड़े वित्त होने पर अहंकारी बन बैठते हैं और पाप से रुपया कमाने पर कटिबद्ध होजाते हैं. परन्तु उनको स्मरण रहे कि संसार की संपूर्ण वस्तु चलती फिरती छाया है आज किसी की कल किसी की मौत दिवस प्रति दिवस समीप आती जाती है माता पिता समझते हैं कि हमारे पुत्रकी आयु बढती है परन्तु यह उनका विचार मिथ्या है, क्योंकि रात दिन रूपी दो चुहे हैं जो मनुष्यों की आयुरूपी रस्सी को निरन्तर काटते जारहे हैं, निशा दिवस के चक्र में मनुष्यों की आयु घटती हुई ज्ञात नहीं होती-मृत्यु मनुष्य की आयु का नाश इस प्रकार करता हुवा चला जाता है जिस प्रकार रोशनी अन्धेरे को—परन्तु जो मनुष्य मृत्यु से भय करता है उसको संसार के विषय दुःख नहीं देसकते हैं परन्तु जिसको मृत्यु का भय नहीं है उसको पाप की भयंकर रूप आशा अपने वशीभूत रखती है, पाप से वही मनुष्य बचसकता है, जो मृत्यु को प्रत्येक समय शिर पर खड़ी देखता है जो मौत को भूलजाते हैं वह अपनी हानि कर बैठते हैं अपनी मौत को प्रत्येक समय स्मरण रखना चाहिये इसही से सम्बन्ध रखने वाला एक दृष्टान्त भी है।

कथा.

एक समय किसी कामी राजा ने किसी विद्वान वैद्य को आज्ञा दी कि हमारे वास्ते एक ऐसी औषधी तयार करदो कि जिसके सेवन से गर्भाधान काम से अवकाश न मिले वैद्य तो ऐसे ही राजा महाराजा नवाब और रईसों की ग्वाज में फिरा करते हैं।

उन्हों ने ऐसी ही औषधी तयार करके और जिस समय वह औषधी राजा की सेवा में भेजी तो राजा जी आनन्दको प्राप्त होते हुवे भृत्य को आज्ञा दी कि इसको बाग में लेजाकर गुरुजी की सेवा में रक्खो भृत्य ने स्वीकार किया, गुरुजी उस औषधी को खाद तो जानते ही नहीं थे कि इस के क्या गुण और अवगुण हैं, उन्हों ने समझा कि राजा जी ने कुछ उत्तम ही वस्तु भेजी होगी झट दो तीन तोला खागये और भृत्य को आज्ञा दी कि जाओ, नौकर वापिस डिब्बा लेकर आया और सम्पूर्ण वृत्तान्त वर्णन किया राजा ने उस समय तो धारण करके मौन धारण किया और रात्री को वैद्य की आज्ञानुसार एक रत्ती खाई और रात्री के अन्तिम समय पर्यन्त कामकी पूर्ति नहीं हुई जब प्रातःकाल उठे तो स्मरण आया कि मैंने तो एक रत्ती ही खाई थी जब मेरी यह गती हुई और गुरुजी की

मालूम क्या गति हुई होगी यही मनमें सोचकर बाग में जापहुंचे देखा तो गुरुजी उसी प्रकार समाधी में वैठे हुवे हैं महाराजा देखकर गहरे विचार में गिरा कि यह क्या बाती है.

जिस काम वृद्धी औषधी (माजून) ने मेरा यह हाल किया उस ने गुरुजी पर कुछ भी असर न किया—

इतने में गुरु जी की समाधी खुली। देखा कि महाराजा गहरे विचार में गिरेहुवे हैं पूछा कि क्या सोच रहे हो महाराजा ने कर बान्ध कर कहा कि महाराज अपराध क्षमा करें तो कुछ जिव्हा से शब्द निकालू महाराज गुरुजी बोले कि निर्भय जो तुम्हारे मनमें हो सो कहो महाराजा ने कहा कि महाराज मेरे मन में एक शंका उत्पन्न हुई है आप इस का उत्तर देकर मेरा दुःख दूर करें गुरुजी ने कहा पूछो—

राजानेकि महारज मैने जो कल आपकी सेवा में कामवर्धक औषधी भेजी थी आपने उस में से तोलेसे जास्ती खाई थी और मैने एक रत्ती परन्तु जवभी मुझ से सम्पूर्ण रात्री में पूर्ती नहीं हुई आप पर उस का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ इस का क्या कारण है सन्यासी ने कहा कि पुनः किसी रोज बतलायेंगे परन्तु तुम आज दो मजदूर बुला कर इस बाग में रक्खो और उन को अच्छे उत्तम वस्त्र पहना कर इस कोठीको सजा कर और सुन्दर स्त्री वास्ते भोग के और प्रत्यक उत्तम सामान

उन को दिया जावे और प्रत्येक दिवस उनको जिस वस्तु की आवश्यकता हो वही भेंट दो—महाराजाने कहा जैसी आपकी आज्ञा वैसाही किया जावेगा— राजाजीने नौकरों को आज्ञा दी कि दो मजदूर नगर में से पकड़ कर बाग में लेजाओ और नज़र बन्द रक्खो और कुलसामान उनको देदो नौकरोंने वैसाही किया जब वह दोनों मनुष्य खा पी कर अच्छे प्रकार पुष्ट होगये और श्रम से मोक्ष हुये तो काम देवने अपना जाल फैलाया अब जब उनसे पूछा जाता कि क्या चाहिये तो उत्तर में कहा जाता कि स्त्री—जब इस पन्द्रह दिवस उनको स्त्री मांगते हुवे होगये तो राजा जी ने गुरु जी के समीप जाकर कहा कि महाराज अब तो यह मनुष्य केवल स्त्री ही स्त्री पुकारते है—

अच्छा तो नगर में मनादि फिरादो कि यह दो मनुष्य जो पाले गयेथे कलको बलिदान किए जावेंगे परन्तु मनादी इस ढगसे कराओ कि यह भी सुन लेवें—और रानी को दो स्त्री आपभी देदो-और दो सुन्दर स्त्री भी भेजदो और जो कुछ वह कहें उसका मुझे समाचार दो श्री राजा जीने सम्पूर्ण कार्य्य वैसाही किया जब उन मजदूरो ने सुना कि कल हम बलिदान किए जावेंगे तो मनमें विचारा कि हमको राजाने निष्प्रयोजन उत्तम२ भोजन वस्त्र दिये है उस का केवल बलिदान देनेके और कोई अर्थ नहीं है

उस का कारण भी तो और नहीं दीखता है अस्तु कल निश्चय मौत के भक्ष बनेंगे और उन स्त्रीयों ने बार बार इच्छा प्रगट की

कि किसी प्रकार हमारी तरफ ध्यान दें परन्तु उनको ध्यान में भी नहीं आया कि हमारे पास और भी कोई है या नहीं उन्होंने आ कर राजा जीसे कहा महाराज वह तो नपुन्सक हैं महराज चकराया कि यदि यह नपुन्सक होते तो वारर स्त्री की इच्छा क्यों प्रकट करते—महाराजा ने सम्पूर्ण वृतान्त गुरुजी ने उत्तर दिया कि वह नपुन्सक नही किन्तु आपने जो उनको मौत का भय दिलाया था उस ने उनको नपुन्सक वनादिया है यद्यपी इतनी इच्छा होने पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया अव तू अपने प्रश्न का उत्तर सुन जिस मृत्यु के भयने उनको नपुन्सक वनादिया जो रात दिन काम की चेष्टा करते थे यद्यपि उनको सम्पूण रात्री को जीने की आशा थी परन्तु मुझे तो एक पल के जीने की आशा नहीं है भला हमें पूनः यह कामदेव किस प्रकार होसक्ताहै हमारे पाठकगण समझ गए होंगे कि मृत्यु का भय कितनावल-वान है कि मनुष्यों को पापों से तत्काल वचासक्ता है यह केवल शरीर की अनित्य जानने काही फल है अर्थात् अविद्या की के प्रथम अंग का जानने से मनुष्य पापों से वच सकता है उस मनुष्य की दशा का ढंग ही पलट जाता है यह एक ऐसी वात है कि जिसकी वुद्धि में वैठजाती है उसकी दशा ही पलटा खाजाती है, मृत्यु प्रत्येक मनुष्य के शिरपर सवार है, जो म-नुष्य लाखों तोपें अपने शत्रुओं के वास्ते रखते हैं वह भी मृत्यु के पंजे से वच नहीं सकते, जिनके पास वहुतसी वंदूक तोप

और डायनामैट के गोले स्थित हैं वह मृत्यु की बराबरी नहीं करसकते जिन्हों ने बर्छी, ढाल तलवारें किर्च तोप और ब मान शत्रुओं से बचाने के वास्ते सहायक बना रक्खे हैं मौत के सामने सब निष्फल हैं मृत्युके भय से कोई मनुष्य जबतक नहीं बचसकता हैकि जब तक उसको अविद्या और विद्या के स्वरूप को ठीक २ नहीं समझे—अत अविद्या का प्रथम चयन अनित्य को नित्य मानना है उसके नाशका कारण मृत्यु का भय है।

ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति ।

दयानन्दट्रेक्ट सोसाइटी के सामान्य नियम

१—इस टरेक्ट सोसाइटी का आशय ऋषि-दयानन्द के सिद्धान्तों का प्रचार करना और वेद मन्त्रों के शब्दों को सरल भाषा में व्याख्या करके और दर्शनों के प्रत्येक सूत्र पर एक टरेक्ट लिख कर उन के आशय को अच्छी तरह समझा कर आर्य पुरुषों को इस लायक बनाना है कि वह वैदिकधर्म के विरोधी के मुकाबले में स्वयं काम चला सकें बाहर से सहायता की आवश्यकता न रहे ॥

२—यह टरेक्ट सोसाइटी एक वर्ष में १६ पृष्ठ के)। वाले ३६० टरेक्ट प्रकाशित किया करेगी जिस में वेद मन्त्रों की व्याख्या एक

टरेक्ट में एक मन्त्र १२५ दर्शनों के सूत्रों की व्याख्या एक ट्रेक्ट में एक मन्त्र १२५ आर्य सिद्धान्तों पर विचार २५ ट्रेक्ट (मुखालिफ़ान) वैदिकधर्म के जवाब मे ७५ आर्यसमाज,, के सुधार पर १० टरेक्ट ॥

३—जो मनुष्य इस टरेक्ट सोसाइटी के ग्राहक बनकर सहायता देंगे उन को १० दिन के पीछे इकट्ठे १० टरेक्ट)॥ के टिकट में भेजदिये जावेंगे जिस जगह १० ग्राहक होंगे उन को नित्य प्रति रवाना किये जावेंगे जिस जिले में १० समाजें १० टरेक्ट रोजाना लेने वाले होंगे या जिस जिले में १०० ग्राहक रोजाना ट्रेक्ट के होंगे उस जिले को एक उपदेशक टरेक्ट सोसाइटी की ओर से बिना वेतन के दिया जायगा॥

ओ३म्

ट्रेक्ट नम्बर ५.

अविद्या का दूसरा अंग

जिसको

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती जी ने रचा और

प्रबन्धकर्त्ता दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी ने

महाविद्यालय मैशीन प्रेस ज्वालापुर में छपवाया.

मिलने का पता—

दयानन्द ट्रैक्टसोसाइटी

(दफ्तर) पुलिस केसामने

बाजार हरिद्वार.

४००० प्रति] [मूल्य ३ पाई.

॥ ओ३म् ॥

अविद्या का द्वितीय अंग ।

अविद्या का प्रथम अंग तो ज्ञात होगया--कि अनित्य को नित्य मानना ही अविद्या है अब उसका दूसरा अवयव [हिस्सा] जतलाते हैं कि--अशुद्ध शरीर को शुद्ध मानना--प्रत्येक मनुष्य जो मोह [मोहब्बत] में फंसता है केवल एक सुन्दरत्व को देखकर । क्या कोई शरीर शुद्ध कहलासकता है कदापि नहीं क्योंकि शरीर के प्रत्येक अवयव से सिवाय मलों के और कुछ नहीं निकलता--चक्षु सब से प्रकाश वाली और शुद्ध है उस से भी जरासी मिट्टी पडजाने से जीवात्मा बहुत दुःख मानता है और जब देखोगे उस में से मल ही [ढीड] निकलता हुवा देखोगे यदि उसको तोडदो तो मांस और रक्त ही निकलता है मनुष्यों के शरीर का कौनसा अवयव है जिस के आभ्यन्तर से निकली हुई वस्तु को मनुष्य शुद्ध मानता हो रक्त को प्रत्येक मनुष्य अशुद्ध मानता है मांस भी अशुद्ध है ही, मेद और अस्थी भी शुद्ध नहीं निदान शरीर में सब ही अशुद्ध वस्तु अर्थात् घृणित पदार्थ भरेहुवे हैं कोई भी स्वच्छ पदार्थ नहीं--मनुष्य

नित्य जल से धोकर ऊपर की त्वचा को स्वच्छ करलेता है परन्तु आभ्यन्तर से मल मूत्रादिकों को कोई भी नहीं धोता है ऐसी दशा में शरीर के स्वच्छ होने की प्रतिज्ञा करना कैसी मूर्खता है-क्या शूद्र का शरीर अशुद्ध और ब्राह्मण का शुद्ध है नहीं २ महाराज शारीरिक दशा में तो ब्राह्मण और शूद्र एक समय ही के शरीरों में यही भ्रष्ट पदार्थ भरेहुये हैं जिन को मनुष्य सुन्दर जानकर उस के मोह में प्राण तक देदेता है यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो यही ज्ञात होगा कि सुवर्ण की घड़ी में पाखाना भरा हुआ है केवल बाहर बनावट ने उसको सुन्दर बना रक्खा है वरन उस के आभ्यन्तर ऐसी वस्तु भरी हुई है कि जिस के स्पर्श से मनुष्य अपने हस्तपाद को बार २ धोता है चाहे कोई बाहर दशा में कैसा ही सुन्दर हो-परन्तु मूल में निर्मलता होने से बच नहीं सकता जब शरीर की ऐसी गति है तो मनुष्य क्यों इससे मोह करता है केवल अविद्या के कारण से वरन कोई विद्वान् मनुष्य ऐसी मलीन वस्तु को स्पर्श करना भी अच्छा नहीं समझता-अविद्या के गहरे गढ़े में गिरकर जीव की बुद्धि विनाश को प्राप्त होकर मनुष्य को धर्माधर्म का ज्ञान भी भुलादेती है यहां तक ही समाप्ती नहीं हुई किन्तु इस अविद्या के कारण से ऐसे मांस को कि जिसकी दुर्गन्ध से मकानों में ठैरना कठिन ज्ञात होता था मनुष्यों ने उसको भी सुगन्ध मान लिया है कोई नहीं विचारता कि भेड का अंगूर ना-

रीर जिस खुराक से बना है वह भक्ष मनुष्यों की दृष्टि से गिरा हुवा है परन्तु मनुष्य उसको भी आनन्द से भक्षण करते हैं, जब तक वह अच्छी दशा में है तब तो उसको अच्छा नहीं मानते परन्तु जब उस में दुरगन्ध आने लगजाती है तो वह मद्य बन जाती है और मनुष्य उसको पीने के वास्ते अधिक मूल्य पर भी लेते हैं।

निदान कि मनुष्यों ने अविद्या के कारण प्रत्येक भ्रष्ट से भ्रष्ट वस्तु को भी स्वच्छ समझकर अपनी आत्मिक दशा का विनाश करबैठे है जिसको देखकर विद्वान् लोग बहुत ही घबराते हैं यदि किसी का हस्त रक्त से स्पर्श होजावे तो वह बीसियों बार हाथ को मिट्टी से धोता है परन्तु रक्त के भरे हुवे मांस को भक्षण के लिए विचारे जीवों की मन्या नाडियों की चालको बन्द करदेते हैं अर्थात् वियोग कर डालते हैं प्रथम तो मनुष्यों का शरीर ही भ्रष्ट पदार्थों से भरा हुआ है परन्तु बहुत से मनुष्य कह बैठेंगे कि हमें तो मनुष्यों के शरीर में से दुरगंध नहीं आती यदि यह स्वच्छ नहीं होता तो दुरगन्ध अवश्य आती, परन्तु आप को स्मरण रहे कि प्रथम तो दुरगन्ध उन पदार्थों में से आया करती है जो उनको कभी नहीं मिले—वरन आभ्यन्तर होने से अधिक समय तक जो गंध को ग्रहण करते हैं अतः उसकी ज्ञानशक्ती (तमीज़) नहीं रहती और वह वस्तु अपने अनुसार होजाती है क्यों कि हम देखते हैं कि चर्मकारी मनुष्य

चमड़ा धोने वाले खटीक चर्म की गंध के इतने शत्रु नहीं होते जितने हम तुम और मांस के बेचने वाले [कसाई] मांस की दुर्गन्ध से नहीं घबराते कारण यही है कि उनकी इन्द्रियों में उन वस्तुओं के समीप रहने से आपस में ऐसा सम्बन्ध होजाता है कि उन में कोई भेद ज्ञान नहीं होता–

जिस प्रकार इस जाति के मनुष्य दुर्गन्ध से घृणा नहीं करते उन को अपवित्र पदार्थ भी स्वच्छ ज्ञात होते हैं यही दशा उन मनुष्यों की है जो रात्रीदिन शरीर का ही जीव, [रूह] सम रक्षा उस की रक्षा में लगे रहते हैं उनको यह विचार नहीं होता कि जिस शरीर से प्रत्येक समय गंदगी के पदार्थ निकलते हैं वह शरीर किस प्रकार शुद्ध कहलासक्ता है–जब कि ऐसे ज्ञान के हेतु से स्थिती होजावे कि प्रत्येक शरीर गंदगी का थैला है चाहे यह थैला चमकदार मखमल का हो अथवा सनकी बोरी का परन्तु उस थैले के अन्दर दुर्गन्धित पदार्थ हैं तो वह कभी इस से मोह नहीं करसकता और कभी सुन्दर वस्तु को देखके उसपर मस्त (दीवाना) होसक्ता है क्योंकि वह जानता है कि यह सुन्दरता बाहिर ही दृष्टि गोचर होती है, नकि आभ्यन्तर भी उस में कोई वस्तु ऐसी नहीं है कि जिस से मोह किया जावे यह चलती हुई गाड़ी जो प्रत्यक्ष में चमकीली ज्ञात होती है प्रत्येक मनुष्य को अपनी तरफ खैंच सकती है परन्तु जिस

मनुष्य को इसके कारण का ज्ञान है वह जानता है कि यह पदार्थ मन दिखावटी हैं।

जो मनुष्य भक्षादिक की दुरगंधी को अच्छी तरह से जानते हैं—वह कदापि ऐसे अन्न के भक्षण का श्रम न करने परन्तु जिन मनुष्यों को अविद्या के कारण से भ्रष्ट शरीर को स्वच्छ होने का निश्चय होजाता है वह शारीरिक उन्नति को समाजिक और आत्मिक उन्नति के बराबर समझते हैं नहीं २ किन्तुः इन से अधिक मानते हैं वह मनुष्य गंदी वस्तुओं को किस प्रकार अशुद्ध कहसक्ते हैं, और किस प्रकार उनके विचार से रुकसक्ते हैं संसार में यदि विचार पूर्वक देखा जावे तो बहुत थोड़े मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो अविद्या के फंदे से पृथक हैं अविद्या के बल और पराक्रम ने संपूर्ण संसार को चक्र में डाल रक्खा है यद्यपि हजारों उपदेशकों के उपदेश होने पर भी जगत् में पापों का बल अपनी संपूर्ण शक्ती से कर्म कर रहा है, संसार की कोई शक्ती ऐसी नहीं है कि इसका निरोध करसके

गवरनमिंट (राजसभा) अधर्मियों को दंड देकर अर्थात् हिंसकों को वध का चोरों को कारागार इत्यादिक दंड देकर निदान कि हजारों प्रकार से यत्न करती हुई यह इच्छा प्रकट करती है कि मेरे राज्य में मनुष्य धार्मिक और सच्चे रहें और पापों का होना नितान्त छूट जावे परन्तु जहाँ तक पता मिलता है यही पाया जाता है कि पापों का होना इस प्रकार बढ़रहा

है कि जिस प्रकार वर्षा ऋतु में नदी की वृद्धि होती है—जहां पहिले एक स्थान पर व्यवहार होते समय छल कपट और मुकद्दमे बाजी का भय नहीं था वहां पर आज हजारों प्रकार के प्रबन्ध होनेपर नहीं नहीं किन्तु रजिस्टरी और तमस्सुक के होने से यह झगड़ा समाप्त नहीं हुआ-भाई का भ्राता शत्रु होगया यही दिन राजसभा में झूठ गवाह और छल पूर्ण वकीलों की चालें दृष्टि गोचर होती है प्रत्येक मनुष्य के मन में स्वार्थ ने डेरा डाल बनालिया है और अहंकार भी इतना बढ़रहा है कि अपने आपको न ज्ञान कि क्या (अफलातून) समझरक्खा है क्योंकि अविद्या के कारण वह नहीं जानता कि उसकी सत्ता क्या है जिस शरीर के लिये वह इतना झगड़ा कररहा है वह एक मिनट में विनाश को प्राप्त होनेवाला है आजकल की शिक्षा अविद्या को दूर करने के अतिरिक्त और भी अधिक वृद्धि को प्राप्त कराती है बालक पाठशाला (स्कूल) में पीछे जाता है उसको तन की रक्षा का स्मर्ण प्रथम होता है छात्र सी अवस्था में बिना छाता और ऐनक के कार्य नहीं कर सकता कोट बूट और बुरस तो ऐसे आवश्यकीय है कि उनका एक दिन न मिले तो सभ्यता की पुच्छ दूर होजाती है इस समय भारतवर्ष में अविद्या के द्वितीयाश्रय ने तो इतना बल प्राप्त करलिया है कि मनुष्य मूल से हजारों योजन दूर जापड़े हैं क्या भारतवासियों ने शुद्धा शुद्ध का विचार नहीं

किया-क्या इस नियम का ज्ञान ही ऐसा नहीं किन्तु भारत-वासियों को प्रत्येक में शुद्धा शुद्ध का विचार लगाहुवा है परन्तु शोक इस बातका है कि इस उत्तम नियम का अर्थ उल्टा समझलिया है भोजन करते समय शुद्धा शुद्धी का बहुत कुछ विचार है परन्तु वह सब बेढंगा है कि अविद्या के दूर करने के अतिरिक्त उसको बढ़ाने का कारण होगया है भारत में कानकुब्ज ब्राह्मण शुद्धी का बहुत अहंकार करते हैं उनकी भोजनादि में तो यह दशा है कि वह ब्राह्मण के हाथ की रोटी तक नहीं खाते हैं यही नहीं किन्तु आपस में भी भाई २ के हाथ की नहीं भक्षण करते परन्तु क्या उन्होंने भ्रष्ट पदार्थों का त्याग किया (नहीं जी इन बातों को ओ३म् २ जपो) नहीं २ किन्तु उन में तो मांस के भक्षण करनेवाले प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु उन में जो शुक्ल होते हैं वह प्राय मांसाहारी के अतिरिक्त मद्य को भी पान करते हैं काश्मीरी ब्राह्मण जो एक दूसरे के हाथ की बनी हुई रोटी नहीं खाते नहीं २ किन्तु पकवान भी नहीं खाते वह भी तो मांस को चट करजाते हैं किंतु इन दोनों प्रकार के पंडितों में हजारों मनुष्य इन पदार्थों का भक्षण करना धर्म समझते हैं और अपने इष्ट देवताओं को अज [बकरे] बलिदान देते हैं नहीं २ किंतु प्राय मन्दिरों में भैंसों के कंठ पर शस्त्र रक्खा जाता है काली कलकत्ते वाली का मंदिर जिस मनुष्य ने देखा होगा वह अच्छी तरह से जानता

है कि यहां तक इन बिचारे पशुओं की हानी इस अविद्या के कारण से होती है पटियाले में विश्वपती नाथ महादेव के मन्दिर में हजारों भैंसे प्रत्येक वर्ष मारे जाते हैं बिचारे बकरे और भेडों की क्या संख्या है विन्ध्याचल देवी के मंदिर में भी ऐसा ही हिंसा का बाजार गरम दृष्टि गोचर होता है यहां इस ही अविद्या के कारण से धर्म के स्थान में अधर्म करते हैं नहीं बिचारते कि जिस दुर्गा को तुम माता कहते हो क्या वह जगत में होने से इन बकरे भैंसों की भी तो माता होगी—क्या यह देवी है अथवा डायन है क्योंकि डायन अथवा सर्पनी के अतिरिक्त और कोई माता अपने बच्चों का भक्षण करना नहीं चाहती है सामान्य दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि——

[illegible]

डायन भी तीन गृह त्याग देती है न ज्ञात कि क्यों मनुष्य इत्यादि पर कलंक लगाते हैं अजी महाराज केवल अपनी अविद्या को सिद्ध करने के लिये अभी आप ज्वाला मुखी के मन्दिर में चले जावें वहां भी जीवों की हिंसा ही होती पावेंगी यही दशा कांगडे में दृष्टी गोचर होती है भला ऐसी उत्तम जगह में जहां पूर्व बडे २ विद्वान रहते थे और इस समय भी जो जाते हैं वह धर्म का स्मरण करके पुन क्या ऐसे खराब कार्य होते हैं केवल अविद्या के कारण से वरन कोई विद्वान् मनुष्य ऐसी बातों को मान नहीं सकता है

यद्यपि इन दुराचारों में स्वार्थ का भी पूर्ण भाग है परन्तु स्वार्थ तो पुजारी और तीर्थ के ब्राह्मणों का ही कहला सकता है किन्तु यात्री जो दूर दूर से बहुत सा रुपया व्यय करके बहुतसी आपत्ती उठाकर घरके कार्य और धन्धों को छोड़ कर वहां तक जाते हैं वह तो अपने ज्ञान में धर्म करने जाते हैं यदि उनको ज्ञान होता कि जीवों की हिंसा जिसको हम अविद्या से धर्म समझ बैठे हैं महापाप है न तो उन्हों ने धर्म शास्त्र की शिक्षा पाई और नहीं सु विद्वानों का सत्संग किया है यदि वह गए तो उन साधुओं के पास जो यात्री वाममार्गी होते हैं अथवा अहम्ब्रह्म भी होते हैं इन दोनों प्रकार के साधुओं के पास तो धर्म की शिक्षा मिल ही नहीं सक्ती क्योंकि वाममार्गी तो अधर्मको भी धर्म मानता है और नवीन वेदान्ती के विचार में जीव ही ब्रह्म है जिसके लिये किसी धर्म की आवश्यक्ता ही नहीं है।

इन के अतिरिक्त वैरागी आदिक तो बिलकुल अपठित होते हैं यही कारण है कि संपूर्ण वह जातियां कि जिनके हृदय में दया भी होती है वैदिक धर्म से पृथक होकर जैन धर्म में मिलित हुवे यदि इस प्रकार के हिंसक धर्म न चल जाते जोकि वेदों के विरुद्ध शिक्षा देरहे हैं, तो कदापि आर्यवर्त्त में बौद्ध जैनादिक नास्तिक मत नहीं चलते और नहीं उन के आचार्यों को उन के चलाने की आवश्यकता ज्ञान होती अस्वच्छ पदार्थको

स्वच्छ जानने वाले, वाममार्गियों ने आर्यावर्त्त को बहुत कुछ हानी पहुंचाई क्या कि मनुष्यों को धर्म के पंथ से हटाकर, अधर्म के मार्ग में लगा दिया और आत्मिकोन्नति के अतिरिक्त शारीरकोन्नति की पुकार मचा दी और कहने लगे—

यावज्जीवेत् सुखेञ्जीवेन्नास्ति मृत्यरगोचरः
भस्मिभूतस्य देहस्य पुनरागमन नमकुतः

अर्थ—जबतक जीव सुख से जीवे क्यों कि प्रत्येक मनुष्य को मृत्यु के पंजे में आना है और भविष्यत के लिए धर्माधर्म कोई वस्तु नहीं है क्यों कि जो शरीर भस्म होगया वह आगे को दूसरा बार कर्मों का फल भोगने के वास्ते किस प्रकार आ सकता है इस प्रकार के अशुद्ध शरीर को शुद्ध मानने वालों, ठीक बातों को न जानकर संसार में ऐसी अविद्या फैलादी है, और मनुष्यों में धर्म के नाश होजानेसे लिप्सा (हिरस) इतनी बढ़गई है कि, जिसके कारण से मनुष्य अपनी इच्छा पूर्ण करने के वास्ते अधर्म पर तत्पर होगये—जियसिंह ने विश्वासघात करके पृथ्वीराज को मरवाया राना सुखदेव ने राना खालसा का संपूर्ण कार्य बिगाड़ा—जयपुर और जोधपुर के राजपूत महाराजाओं ने कि जिन सुकुल राजपूतों में प्रतिष्ठा का

गंडा समझा जाता है यवनमती राजाओं को लड़की देदी क्षत्री पने को बट्टा लगा दिया ऐसा क्यों मनुष्यों ने सांसारिक प्रतिष्ठा और शरीरों के भोगों को धर्म और कर्म से अधिक समझा था उन के सामने धर्म एक तुच्छ वस्तु थी. निदान कि वाममार्ग ने भारतवर्ष को इतने कलङ्क लगाये हैं कि जिनके लिखने के लिये इस लघू पुस्तक में स्थान कहां मिल सक्ता है।

अजी-वाममार्ग क्या है—वाम शब्द का अर्थ उलटा और मार्ग का रास्ता है. अर्थात् मुक्ती का उलटा रास्ता सर्वदा मिथ्या मार्ग पर वही चलते हैं कि जिन को रास्ते का ज्ञान न हो और ज्ञान का ठीक २ न होना यही अविद्या है अतः आर्यावर्त्त में वाममार्ग का कारण यह अविद्या का दूसरा अवयव है अर्थात् शुद्ध वस्तु को अशुद्ध जानना जब तक मनुष्य जाती इस भ्रष्ट शरीर को स्वच्छ समझ रहेंगे तबतक यह अविद्या दूर नहीं होसक्ती और नहीं उन के हृदय में आत्मा की उन्नति का विचार आसकता है क्यों कि पश्चिम की तरफ चलने वाला पूर्व के पदार्थों को देख नहीं सकता जब तक कि वह पश्चिम की तरफ से पूर्व की तरफ न देखे—

इस ही प्रकार शारीरिक और आत्मिक उन्नति के दो विरुद्ध मार्ग हैं जो मनुष्य शारीरिक उन्नति में लगे हुवे हैं वह आत्मिक उन्नति से दूर भाग रहे हैं और जो आत्मिक उन्नति की चेष्टा करते हैं वह शरीर की कुछ परवाह नहीं करते और जो मनुष्य

दोनों उन्नति चाहते हैं यह दोनों मार्ग से गिर जाते हैं जिस प्रकार एक मनुष्य देहली में है वह कलकत्ते भी जाना चाहता है जो कि पूर्व में हैं और पंजाब भी तो नित्य एक मील पूर्व को जाता है और एक पश्चिम की ओर कुछ कालान्तर के पश्चात् अपने को देहली में ही देखता है न तो वह कलकत्ते जासका और नहीं पंजाब में परन्तु हमारे पाठकगण कह उठेंगे कि यदि यही दशा है तो आर्यसमाज के छठे नीयम में यह क्यों लिखा है कि शारीरिक समाजिक और आत्मिक उन्नति करना क्योंकि तुम शारीरिक उन्नति के विरुद्ध कह रहे हो परन्तु स्मरण होकि इस प्रकार की तर्क करने वालों ने स्वामी जी के नीयम को समझा नहीं क्यों कि नीयम यह है कि संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश है अब उस की व्याख्या करते हैं कि संसार का क्या उपकार किया जावे तो उसके उत्तर में कहते हैं कि जो मनुष्य अनाथ और वृद्ध हैं अपनी शारीरिक दशा में निर्बल होने से रक्षा में तत्पर हैं उनको भोग्य पदार्थादिक की सहायता देकर शारीरिक उन्नति करना और जो मनुष्य अविद्या के कारण से अपनी आत्मा को निरबल जानते हैं और उनके अन्दर इस प्रकार की शक्ति (होसला) नहीं है कि वह अच्छे कार्य करसकें तो उनको धर्मोपदेश देकर अविद्या के जाल से निकाल कर उनकी शक्तियों का दर्शन कराने से दृढ़ बनाना यह आत्मिक उन्नति है और जो मनुष्य मतमतान्तरों के झगड़ों से भाई होने पर भी आपस में झगड़े रहे हैं उनको वैदिक

धर्म की पवित्र शिक्षा से इन वाद विवादों से हटा कर परमात्मा की सच्ची भक्ती में लगाना यह सामाजिक उन्नति है क्योंकि जब सब मनुष्य परमात्मा के सच्चे सेवक और वैदिक धर्म के अनुसार काम करने वाले हो जावें तो जगत में कोई भी स्वार्थी नहीं रहता और मनुष्य जाती के जो अविद्या के कारण से टुकडे होकर प्रत्येक मनुष्य अपने आप को निर्बल समझ बैठा है यहां तक कि बहुत मनुष्य केवल रोटी का उत्पन्न कर लेना ही बहुत कुछ समझ रहे हैं वह नहीं जानते कि हम मनुष्य जाती से पशु बन रहे हैं क्योंकि भविष्यत का प्रबन्ध करना मनुष्य का धर्म है और वर्तमान में अपने पास हो उस पर ही सन्तोष करना पशुओं का धर्म है क्योंकि मनुष्य सर्वदा आगे बढ़ने की इच्छा रखता है हमारे विचार में तो जब तक अविद्या का द्वितीय अवयव संसार में स्थित रहेगा तब तक कोई मनुष्य वह उन्नति कि जिस की पूर्व के ऋषी और विद्वान् भी प्रशंसा करते थे नहीं हो सकता और जो मनुष्य इस अविद्या से पृथक होजाते हैं वह अपने कामों को बडे प्रबल से कर सकते हैं और उन में से एक २ मनुष्य लाखों मनुष्यों को सुधार सकते हैं आओ आर्य गण! हम सब मिल कर परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमारे हृदय से अविद्या के इस अंग को ढूंढने में हमें सहायता दे आओ प्रयत्न करें कि यह हमारी आत्मा को दुर्बल बनाने वाली हम से दूर चली जावे और हम जिस आनन्द को प्राप्त करना चाहते हैं उस को प्राप्त कर लेवें ॥ ओ३म् शम्

महा विद्यालय

में गुरुकुल, अनाथालय, उपदेशक पाठशाला, साधूआश्रम, गौशाला, आर्टस्कूलः इत्यादि उपस्थित हैं ॥

॥श्री॥

कन्यापुनः संस्कार

जिसको

श्रोत्रिय शंकरलाल

सम्पादक अबलाहितकारक ने
देशोपकारार्थ बनाया

श्रीराम शर्म्मा के प्रबन्ध से
दीनबन्धु यन्त्रालय बिजनौर में
छापागया।

कीमत फी पुस्तक)।

कन्यापुनः संस्कार

अर्थात्

जिनका पति से समागम नहीं हुआ है उनका दूसरा विवाह.

महाभारत अनुशासन.

धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।
द्वितीयं धर्मशास्त्रन्तु तृतीयं लोकसंग्रहः ॥

अर्थ—धर्म्म के जाननेकी इच्छा करनेवाले जो पुरुष हैं उन के वास्ते श्रुति सब से प्रमाणिक प्रमाण तत्पश्चात् स्मृति प्रमाण और लोकाचार सब से पश्चात् मे प्रमाण है ।

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्ते उल्लंघ्य वर्त्तते ।
आज्ञाच्छेदी ममद्वेषी न स भक्तो न वैष्णवः ॥

अर्थ—श्रुति, स्मृतिका कहाहुवा जो धर्म्म है वही मेरी आज्ञा है जो उस को नहीं मानता वह मेरी आज्ञा का भंग करनेवाला और मुझे अप्रिय है न वह मेरा भक्त है और न वैष्णव है ।

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म्ममनु तिष्ठन् हि मानवः
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्यचानुत्तमंसुखम् ॥

।—श्रुति स्मृतियों में जो धर्म्म कहा है उसका अनुष्ठान करनेवाला ष्य इससंसारमें कीर्त्ति और मरणानन्तर अत्युत्तम सुखको प्राप्तहोताहै

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्म्मशास्त्रंतु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मोहि निर्बभौ ॥

।—श्रुति नाम वेदका और स्मृति नाम धर्म्मशास्त्रका जानना चाहिये और वेदार्थ के स्मरण करदेनेवाले धर्म्मशास्त्रज्ञ जनों को वे दोनों विषयों में अवितर्क माननीय हैं अर्थात् सब धर्म सम्बंधी कार्य्य ते स्मृति के अनुकूल ही करने चाहिये क्योंकि इन्ही दोनों से र्म प्रकाशित होता है । तथा इन दोनों के अनुकूल और भी र सत्य शास्त्रहैं (पुराण इतिहास) उन से भी धर्म जाना जाताहै । इसलिये जो कुछ इस में लिखागयाहै वह श्रुति स्मृति अनुकूल पर सबको माननीय होना चाहिये ।

तात्पर्य्य यह है कि लोकाचार वा अन्य ग्रन्थोंकी अपेक्षा श्रुति ते दोनों प्रबल हैं ... लोकाचारादि और श्रुति स्मृतिमें पर विरोध आवे ... के अनुकूल कार्य्य करने

चाहिये लोकाचारादि के अनुकूल नहीं, परन्तु जहां श्रुति स्मृति में परस्पर विरोध पायाजावे वहा श्रुति के अनुकूल ही सब कार्य्य करने चाहिये इस में पूर्व मीमांसाकार जैमिनि महर्षि ने श्रुति मास्मृत्याधिकारण में यह सिद्धांत किया है कि "विरोधेत्वनपेक्षयस्यादसति ह्यनुमानम्" पू० मी०अ० १ पा० ३ श्रुति और स्मृतिका परस्पर विरोधहो तो स्मृतिकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये और यदि स्मृति में कोई अधिक विषय पायाजाताहो और वह श्रुति में न मिलताहो तो उस स्मृति को अनुमान से श्रुति मूलकही समझलेनाचाहिये ।

इस समय दो प्रकार के दल आर्य्यावर्त्त में हो रहे हैं एक का अभिप्राय है कि नाम मात्रभी यदि कन्या का पाणिग्रहण संस्कार होगयाहैतो फिर वह जन्म केदिनी होगई अब उस्का संस्कार विवाहके साथ नहीं करनाचाहिये ।

दूसरे दलका विचार है कि कैसी ही विधवा हो सब का जो (युवति वा कन्या है) पुन संस्कार होनाचाहिये परन्तु हम इस पुस्तक में केवल अक्षतयोनि कन्या अर्थात् जिसका पाणिग्रहण संस्कार मात्र हुवा है और पति समागम नहीं है धर्म्मशास्त्रानुकूल पुनःसंस्कार होना सिद्धकरते हैं ।

आज कल पुनर्विवाह विधि निषेध रूप अनेक प्रकार का आन्दो

न होरहा है और कोई २ अक्षतयोनि कन्याओं के भी पुनर्विवाह
। निषेध करते हैं और युक्ति भी अनेक प्रकारकी उपस्थित करते
कि यदि पुनर्विवाह होनेलगेगा तो जो स्त्रियां कलहकारिणी होंगी
र जिनका चित्त अपने पतिसे न मिलेगा वे पुनर्विवाह आश्रम
लजानेसे विषादि देकर पतिघात करेंगी और पतिका भय स्त्रियों
ो न रहेगा स्वेच्छाचारिणी होजावेंगी इत्यादि हानि बताते हैं ।

प्रथमतो इसका यह उत्तर है कि ऐसी स्त्रियां जिनकी बुद्धि
यभिचारादि दुराचरण की ओर झुकी है क्या अब नहीं हैं। दूसरे
ाह भी विचारणीय है कि जितनी आपत्ति पुनःसंस्कारके नहोने से
भोगते और जैसे २ भ्रूण हत्यादि पापहोते हैं उसकी अपेक्षा पुनर्वि-
वाह के होने में बहुतही न्यून आपत्ति होगी कदाचित् कोई स्त्री
किसी विशेष कारण से पतिघात भी करे तो भी नीचों के साथ
बडे कुलकी स्त्रियों के निकलजाने वा गुप्तरीति से व्यभिचार होकर
गर्भपात आदि से होने वाली आपत्तियों की अपेक्षा पुनर्विवाह की
आपत्ति ध्यानदेने योग्य नहीं है ऐसे तो प्रायः सबही कर्तव्य कामों
में कुछ न कुछ विघ्न खडे होतेही रहते हैं उस में धर्मशास्त्रों और
वेदों के अनुयायी विद्वानों का यही निश्चय चला आया है कि जिन
कामों के करने में अधर्म्म विघ्न हानि इत्यादि न्यूनहो सुख लाभ
और धर्म अधिक होवे कर्तव्य समझे जाते हैं ।

हमारे धर्म शास्त्रों में सब प्रकार के धर्मों में दो भेद कियेगये

है एक सनातनधर्म और दूसरा आपद्धर्म, जिसकाल में समय
हेर फेरसे धर्म का पालन नहीं होसकता हो उस समय मनु
आपद् धर्म से निर्वाह करे किन्तु सर्वथा धर्म का त्याग कर. अ
में फँसजाने की अपेक्षा से आपत् धर्म अनुसार निर्वाह करना अ
त्तही उत्तम है परन्तु आपद्कालका धर्म सनातन अथवा उत्त
धर्म का बाधक नहीं है अर्थात् जो सनातन धर्म का पालन या
करसके उसको आपद्कालीन धर्मके अनुसार वर्तना आवश्यक नहीं है

इस प्रसंग में भी पुनर्विवाह को न करके यदि सनातनधर्म
पालन स्त्री करसके तो उसके लिये पुनर्विवाह का विधान नहीं,
किन्तु जो विधवा होकर ब्रह्मचर्य व्रतसे नहीं रहसकती हैं अ
भोगमें इच्छा रखतीहैं या गुप्त रीतिसे व्यभिचार गर्भपात करनेवा
वा नीच जातियोंके साथ इच्छानुसार निकल जावें और दोनों कु
(पिताश्वसुर) को दाग लगावे उनका यथायोग्य इच्छा नुसार पुनर्विवा
आपत्काल के निवारणार्थ करदेना अधर्म नहीं है किन्तु धर्मही है

परन्तु जिनका विवाह विधि रहित हुवाहो या जिनका पाणिग्र
संस्कार होजाने पश्चात् पतिसे संयोग न हुवाहो तो ऐसी कन्या
रा विधवा विवाहनहीं कहलावेगा क्योंकिउनका कन्यात्व नष्ट न
हुवा है इसलिये वह वस्तुतः कन्याही है।

परन्तु हमारे सनातनी भाइयों को पोथाधारी पंडितों ने ऐ

दृढ विश्वासकरादिया है कि विवाह होने पश्चात् उसका कन्यात्व नष्ट होजाता है और इसकी पुष्टि में मनुजी का यह प्रमाण देते हैं जिस्में इस वातकी गंध तकभी नहीं है।

म० अ० ८ श्लोक २२६

पाणिग्रहणिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम् ।
तेषामिष्ठातु विज्ञेया विद्धद्भिः सप्तमेपदे ॥

अर्थ—पाणिग्रहण सम्बन्धि जो मंत्र हैं उनके ही पढनेसे दारलक्षण होता है अर्थात स्त्री वनती है, उनकीपूर्ति विद्वानों ने सप्तपदी में कही है अब पाठकगणविचार सकते हैं कि इस में कन्यात्व का दूरहोना कहां आया किन्तु इस श्लोक का यह अभिप्राय है कि यदि कोई वाग्दान इत्यादि से दारलक्षण मान वैठे तो नहीं होसकता है दारा वा स्त्री जवही वनती है जब सप्तपदी होजाती है।

कन्या शब्द कई अर्थमें आता है (१) कन्या शब्द पुत्रीवाचक है जैसे रामदत्तकी कन्या।

(२) कन्या शब्देनलज्जाऽऽद्यभिज्ञान रहित वयो युक्ता विवक्षिता तथाच पुराणम् ।

कन्या शब्द लज्जा आदि कम समझ अवस्था के वास्ते भी आता है जैसे पराशर माधव उद्धृत ।

यावन्न लज्जितांगानि कन्या पुरुष सन्निधौ
योन्यादीनि न गूहेत तावद्भवति कन्यका ॥

अर्थ–जबतक कन्या पुरुष के पास जाने में अंगों से लज्जा नहीं करे और योन्यादि न छिपावे तबतक कन्याही होती है, परन्तु हमारा अभिप्राय इनदोनों प्रकार की कन्याओंसे नहीं है हमारा अभिप्राय उस कन्या से है जिसका पुनः संस्कार वैदिक मंत्रों से होता है।

"कन्यायाःकनीनच । अ० ४० । सूत्रस्य महाभाष्यं कन्या शब्दोऽयं पुंसाभि सम्बन्ध पूर्वके ससयोगे निवर्त्तते। अत्र कैय्यटआह–शास्त्रोक्तो विवाहोऽभि सम्बन्धस्तत्पूर्वके पुरुष संयोगे कन्याशब्दोनिवर्त्तते । यातुशास्त्रोक्तेन विवाहसंस्कारेण विना पुरुषंपुनक्तिसा कन्यात्वं न जहाति"

अर्थ–(कन्यायाः कनीनच) इस सूत्र पर महा भाष्य कार और कैय्यट ने कहा है कि जिसके साथ वेद शास्त्रोक्त विवाहहो उस विवाहित पतिसे संयोग होने पश्चात् कन्यत्व नष्ट होता है और जो शास्त्रोक्त विवाह संस्कार के विनाही पुरुष से संयोग करलेवे वह कन्याही बनी रहती है, इसी लिये कन्या के पुत्रको कानीन कहते हैं।

यह पहिले लिख आये हैं कि महाभाष्यकार और कैय्यट ने

कन्यायां कनीनच" इस सूत्रके भाष्य में यह लिखाहै कि वेद शास्त्रोक्त विवाहित पति से संयोग होने पश्चात् कन्यात्व नष्ट होता अर्थात् विवाह संस्कार मात्रसे नष्ट नहीं होता है ।

ताः क्षतयोनयो वैवाहिक मंत्रैः संस्क्रियमाणाः । अपि यस्माद पगतधर्मविवाहादि शालिन्योभवन्तिनाऽसौध-र्म्योविवाहइत्यर्थः ॥ नतुक्षतयोनेर्वैवाहिक मंत्रहोमादि निषेधकमिदम् । या गर्भिणीसंस्क्रियते तथा वोढुःकन्या समुद्भवमिति मनुनैव क्षतयोनेरपि विवाहसंस्कारस्यव-क्ष्यमाणत्वात् ॥ देवलेनतुगान्धर्वेषु विवाहेषु पुनर्वैवा-कोविधिः । कर्त्तव्यश्चत्रिभिर्वर्णैः समयेनाग्निसाक्षिकः ॥ इतिगान्धर्वेषुविवाहेषु होममंत्रादि विधिरुक्ता । गान्ध र्वश्चोपगमनपूर्वकोऽपिभवतितस्यक्षत्रिय विषयेसुधर्म-त्वंमनुनोक्तम् । अतःसामान्यविशेषन्यायादितरविषयो ऽयंक्षतयोनिविवाहस्याधर्मत्वोपदेशः ॥

इस सबका अभिप्राय यह है कि क्षतयोनि स्त्री दो प्रकारकी होती हैं एक तो शास्त्रोक्त विवाह से पूर्वही किसी के साथ संयोग होजावे । द्वितीय शास्त्रोक्त विवाह से प्राप्त हुये पति से संयोग होना

इन में जो पहिली का विवाह वेद मन्त्रों से होसकताहै और देवल ऋषि के मत से गान्धर्व विवाह हुये पर क्षतयोनि का पुनर्विवाह वेद मंत्रों से होसकता है परंतु मनु महाराजने उन द्वितीय प्रकारकी क्षत योनि कन्याओंका वेद मंत्रों से विवाह होना अधर्म कहा है कि जिनका शास्त्रोक्त विवाहित पति से संयोग होचुका हो इससे यह सिद्ध हुआ कि जिनका शास्त्रोक्त विवाह मात्र पतिसे संयोग नहीं हुवा वे वस्तुतः कन्याही हैं, उन अक्षत योनि कन्याओंका विवाह वैदिक मंत्रोंसे ही होना चाहिये तथाच मनुः ।

साचेदक्षत योनिःस्याद्गतप्रत्यागतापिवा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सापुनः संस्कार मर्हति मनुः । १ ।

अर्थ-जिसका पतिने परित्याग कियाहो वा अपनी इच्छासे स्त्रीने (किसी दोषविशेषके कारण) पति का त्याग कियाहो ऐसी स्त्री यदि पूर्वपतिसे विना संयोग पायेहुईहो तो फिर संस्कार करनेके योग्यहै ।

पाणिग्रहमृतेबाला केवलं मन्त्रसंस्कृता ।
साच अक्षत योनिःस्यात् पुनः संस्कारमर्हति ।वसिष्ठः२।

अर्थ-विवाह होने पश्चात् यदि वरकी मृत्यु होजावे और उस कन्या का केवल मंत्र संस्कार होगयाहो अर्थात् उस कन्याका पतिसे संयोग न हुवा हो तो वह फिर संस्कार करने योग्यहै यानी उसका फिर दूसरे से विवाह करदेना चाहिये ।

अक्षता भूयः संस्कृता पुनर्भूः ॥ विष्णु ॥ ३ ॥

अर्थ—अक्षत योनि स्त्री का यदि फिर विवाह संस्कारहो तो उसे पुनर्भू कहते हैं।

अक्षता चक्षता चैव पुनर्भू संस्कृता पुनः ॥ या०व ४ ॥

अर्थ—अक्षत योनिहो वा क्षत योनिहो दुबारा विवाह संस्कार होने से पुनर्भू कहाती है।

वरश्चेत् कुलशीलाभ्यां न युज्येतकथञ्चन ।शा०त०५।
नमन्त्राः कारणंतत्र नचकन्याऽनृतंभवेत् ॥
समाच्छिद्यतुतांकन्यां वलादक्षतयोनिकाम् ।
पुनर्गुणवतेदद्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥

अर्थ—(विवाह होने पश्चात् की वार्ता है) कथंचित् यदि वर कुल और स्वभावका दुष्टहो तो वहां मंत्र पढजाना कारण नहीं होगा और वह कन्याही वनी रहेगी ॥ १ ॥ यदि वह कन्या अक्षत योनी है तो जोरसे उसे छीन लाकर फिर गुणवान पुरुषको देदे यह शातातप कहते हैं ॥ २ ॥ नारद स्मृति

कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणपूर्विका ।
पुनर्भूः प्रतिमा ज्ञेया पुनः संस्कारकर्मणि ॥ १ ॥

कन्यैवाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहण दूषिता ।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनः संस्कारमर्हति ॥ २ ॥
कौमारं पतिमुत्सृज्ययात्वन्यं पुरुषंश्रिता ।
पुनः पत्युर्गृह मियात्साद्वितीया प्रकीर्तिता ॥ ३ ॥

अर्थ–जो कन्या अक्षतयोनि है और उसका पहिले विवाह होचुका है उसे प्रथम पुनर्भूजानना और वह संस्कार करने योग्य फिर है। १। जो अक्षतयोनि कन्याहै और केवल विवाहही होगयाहै वह प्रथम पुनर्भू कही जायगी और वह फिर विवाह करने योग्य है ॥ २ ॥ बाल्यावस्था के पति को छोड़ जो दूसरे पतिके आश्रय होकर फिर उसी पतिके घर आजावे तो वह द्वितीय पुनर्भू कहलाती है ॥ ३ ॥

पराशरमाधवः ॥ ७ ॥ यत्र ४९१ आचारकांडम्
हीनस्य कुलशीलाभ्यांहरन् कन्यांनदोषभाक् ।
न मन्त्रः कारणं तत्रनच कन्याऽनृतं भवेत् ॥

अर्थ–जिसका कुल और स्वभाव अच्छा नहीं उस से (विवाह के पश्चात्) कन्या का छीनलेना दोष नहीं और वहां मंत्र पढ़ेजाना भी कारण नहीं और वह कन्याही रहती है।

वरयित्वा तुयः कश्चित् प्रणश्येत्पुरुषोयदा ।
ऋत्वागमांस्त्रीनतीत्य कन्याऽन्यंवरयेद्वरम् ॥का०८॥

अर्थ–जो पुरुष कन्याको विवाह विधिसे स्वीकार करके नष्ट हो जायतो कन्या आगामी तीन ऋतुओं को छोड के अन्य वरके साथ विवाह करलेवे, इसको माधवाचार्य्य ने पराशर के भाष्यमें देशांतर गमन विषय में लगाया है।

उद्वाहितापि साकन्या न चेत्संप्राप्तमैथुना ।
पुनःसंस्कार मर्हति यथा कन्या तथैव सा ॥ ना०९

अर्थ–विवाही हुई भी कन्या यदि मैथुन को प्राप्त नहीं हुई है अर्थात् अक्षत योनि है तो वह फिर विवाह संस्कार करने योग्यहै जैसी कन्या वैसीही वहहै।

जो लोग वेद शास्त्र को मानकर उनपर चलने वाले हिन्दू हैं उनके लिये तो वेदकी एक ऋचा और शास्त्रका एक श्लोक बहुत है पर जो लोग वेद विरोधी हैं और हिन्दू नही हैं उनके लिये बड़े२ पोथे भी कुछ नहीं हैं।

शास्त्र जानने वालों के लिये शास्त्रीय प्रमाणही पूरेहैं इस लिए बढ़ाकर लिखना व्यर्थ समझताहूं पर जो शास्त्र नहीं जानते उनको संसार की बुराई पर ध्यान देना चाहिये, कन्या पुनः संस्कार हिन्दू के यहां बन्द होजाने से करोड़ों औरतें बालपन से विधवा बन दुख सागर में डूबरही है, यद्यपि शास्त्र के अनुसार वे विचारी निर्दोष कुमारीही हैं पतिबिना ससुरे नइहरे दोनों में निरादर पाती हैं, काम

को न सह व्यभिचार में पड़ने से गर्भ गिराती रहती हैं, नये जन्मे प्यारे बच्चों को राक्षसी के समान काट फेंकती हैं, मुड़ी मरोरकर जमीन में गाड़देती हैं वा नदियों में बहादेती हैं पकड़ जाने पर सर्कार से दण्ड पाती हैं, माता पिता स्वसुर के कुलमें कलंक लगाती हैं और हिन्दु समाज को पतित बनाती हैं, इस प्रकार के अनेकों अत्याचार दिनरात होते ही रहते हैं, सब हिन्दू इन बातों को जानते हैं और आखों देखते रहते हैं इसलिये बहुत कहने की जरूरत नहीं ऐसा कौन निर्दईहोगा जो इनके दुखसे दुखी न हो पर तौभी हिन्दू इन बिचारियों की चिल्लाहट पर कुछभी ध्यान नहीं देते, इसलिये सज्जन लोगों से प्रार्थना है कि इस छोटी पुस्तक को पढ़कर भत्यक्ष बुराइयों पर सोचें और बिचारें तब यदि दया रखते हों यदि अपने समान सब का दुख समझते हों देश समाज का हितके लिये, दुखियों का दुख दूर करना चाहते हों तो मेरी सहायता को दृढ़होकर प्रत्यक्ष खड़े हों जिससे इनबिचारियों का जीवन सफल हो, यह पुस्तक लोगों को जगाने ही के लिये छापी जाती है, समाज का सुधार करना, मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य है, बुराई को हटानाही धर्म्म है, वेद पुराण और शास्त्रका मुख्य आशय लोक और परलोक का सुख साधन भरहै पर इनबातों पर ध्यान नदेकर जो लोग निरे शास्त्रार्थाभिमानी और हठी हैं तथा बुराइयों की पुष्टिही के लिये कमर बांध वेदशास्त्रके श्लोकों का अर्थ बदलने और खंडन करने मेंही अपनी

पंडिताई समझते हैं उनसे विनय पूर्वक मेरी यह चैलेंज यानी ललकार है कि मुझसे शास्त्रार्थकर निवटारा करलें कि बाल विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्रीय लोक के अनुसार है यानहीं यह चैलेंज विशेष-कर उन पंडितों पर समझना चाहिये जो बालविधवा विवाह को शास्त्र विरुद्ध और बुरा समझते हैं।

शास्त्रार्थ के नियम.

(१) शास्त्रार्थ लिखकर भाषा में होगा जिसको सब समझसकें।

(२) श्रुति, स्मृति पुराण में, श्रुति स्मृतिसे और स्मृति पुराण इत्यादिसे बल वति रहेगी।

(३) श्लोकों का ठीक २ अर्थ लिखना होगा, वादी प्रति वादी दोनों के लेख अबलाहितकारक नाम मासिक पत्रमें छापदिये जांयगे और शास्त्रार्थी महाशय के पास भेजदिये जांयगे सचाई झुठाईका निर्णय पाठकलोग आपही करलेंगे।

श्रोत्रिय शंकरलाल कृत पुस्तकें.

विधवा पुनः संस्कार ≈)॥ वर्णव्यवस्था ≈) गंगामहात्म्य ≈) इतिहास पुराण स्मृति नहीं)॥ स्त्री अधिकार मीमांसा ≈)फरियाद बेवा उर्दू स्त्री की बनाई ‑) वनिताबन्धु स्त्री कृत ‑)

मिलनेका पता—श्रोत्रिय शंकरलाल बिजनौर

१००० रुपया इनाम.

हम भारतवर्ष के सब पंडितो से बाल विधवा विवाह पर शास्त्रार्थ क
का तैय्यार हैं जो पंडित अक्षतियोनि विधवा विवाह का खंडन करें
उनको हम १००० रुपया इनाम देंगे।

बालविधवा विवाह प्रचारक सभा.

यह सभा दो वर्ष से स्थापित हुई है इसके सभासद बड़े २ योग
पुरुष हैं, यह गरीब विधवाओं का विवाह अपने खर्च से करादेती है औ
जिस विधवा के माता पिता विवाह नहीं करना चाहते उनका विवाह यदि
वह १६ वर्ष से ऊपर है तो सभा खुद उसकी दर्ख्वास्त पर योग्य वर के
साथ करादेती है।

अबलाहितकारक.

इस नामका मासिक पत्र श्रोत्रिय शंकरलाल द्वारा सम्पादित होकर प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित होता है जिसमें अक्षतयोनि विधवा विवाह मंडन धर्मशास्त्र के प्रमाणों से सिद्ध कियाजाताहै वार्षिक मूल्य १) स्त्रियोंसे ॥=) मात्र लियाजाताहै

श्रीराम शर्म्मा–मैनेजर अबलाहितकारक बिजनौर.

॥ ओ३म् ॥

लविलाहट भजनमाला ॥

१ भजन ।

निराकारी तुम परम उपकारी तुम देवों के देव कहाओ ।
मैं मूर्ख मेरी टूटीसी नैया लगाओ स्वामी पार (टेक)
को हरि शरण में लेवो अपना ज्ञान प्रभू हमको देवो ।
ों से अब तो बचाओ स्वामी ॥१॥
ोध ने मुझको घेरा, लोभ मोह ने करलिया डेरा ।
पनो शरण में लेवो स्वामी ॥२॥
मको हरि विद्याबल देवो मूर्खता सारी हर लेवो ।
द्या का भूषण पहनावो स्वामी ॥३॥
समाज के तुम एक स्वामी न्यायाकारी और अन्तर्यामी ।
सृष्टि के रचता कहाओ स्वामी ॥४॥ प्रभू तुम० ॥

२ भजन ।

पड़ी भंवर में नैया नाथ इसे तारदे तारदे तारदे । (टेक)
आवे है नजर किनारे हम इसी से हिम्मत हारे हरे ।
वदे तीनों ताप हमारे कृपा कर इन्हें टारदे टारदे टारदे ॥१॥

मेरे पांचों तो बैरी सङ्ग में, नहीं बाहर भीतर इसी अङ्ग में।
कर दिया इन्होंने अति तङ्ग में नाथ इन्हें मारदे ३ ॥२॥
यह मनुष्य का देह दुश्वार है यह मौका न बारम्बार है हरे।
हे ईश्वर तू सर्वाधार है जीवन का हमें सारदे ३ ॥३॥
जो तेरे दरपे आवे वह मन इच्छा फल पावे हरे।
पं० तेजसिंह कथ गावे हमें भी फल चारदे ३ ॥४॥

३ क़व्वाली।

ईश्वर तुम्हीं सर्वाधार सब का पालन करनेवाले (टेक)
तुम हो अजर अमर निराकार हो सबके सृजनहार।
तुमने रचा सकल संसार ए हिरण्यगर्भ कहलानेवाले ॥१॥
तुम हो व्यापक जगदाधार कीना औषधी अन्न तयार।
जो था जीवों का आधार, अय पितृव्य कहलाने वाले ॥२॥
तुम हो न्यायाधीश सरकार हो दुष्टों के रुलानेहार।
नहीं झूँठों की सुनो पुकार अय न्यायाकारी कहलानेवाले
तुमने कीनी दया अपार दीना वेदों का भंडार।
ऊधो करले कुछ उपकार अय मनुष्य तन पाने वाले ॥४॥

४ क़व्वाली।

मुनिवर दयानन्द महाराज भारत दुःख मिटाने वाले (टेक)

गौ रोती थीं जार बेजार नहीं सुनता था कोई पुकार।
तुमने की दया अपार अय गोशाला बनाने वाले ॥१॥
तुमने कीना ऐसा बिचार, खोले दीनालय एकबार।
कीना भारत का उद्धार, अय ओर्फनेज चलाने वाले ॥२॥
यह आपका है उपकार, कन्याशाला हुई तय्यार।
पढ़कर होगी विदुषी नार, अय पुत्री हित चाहने वाले ॥३॥
ब्राह्मण सोये थे पांव पसार, नहीं करते थे देस सुधार।
तुमने कीना फिर हुशियार, कुल के दीप कहलाने वाले ॥४॥
यहां पर रोती थीं विधवा नार, दुःखों से करती थीं हाहाकार
कोई खाती थीं पैनी कटार, उनकी धीर बँधाने वाले ॥५॥
भारत नैया थी मँझधार, तुमने आन लगाई पार।
ऊधोराम को दिया निस्तार, खेवा पार लगाने वाले ॥६॥

५ दादरा।

मेरा वैदिक फुलवरिया को मन तरसे (टेक)
अङ्गोंका सड़कें उपाङ्गोंकी नहरें, उपनिषदोंकी क्यारीमेंरङ्गबरसे
हवन यज्ञ से पवन सुगन्धित, उमगे जिया हिया सरसे ॥२॥
ब्रह्मचर्य की बान बसत यहां, वहां जाने की विनती करूँ हरसे
शान्तिस्वरूप शान्तिरस आत्मा, ज्ञान योग वैरागन में ॥४॥

हो युवान रंडी की करकी, कर शृङ्गार बैठे आ खिड़की।
देख रूप को अग्नि भड़की, आग लगा धन माल को,
वहुतों ने तजी लुगाई ॥३॥
धरो ध्यान जो तुम हो सुरता, पाप कुण्ड में लगरहे गोता।
तेगसिंह देख २ के रोता, ऐसे अनर्थ हाल को,
अब कितने बने जवाई ॥४॥

८ दादरा।

पहनो पहनोरी सुहागन ज्ञान गजरा। (टेक)
दया धर्म की ओढ़ो चुँदरिया, शीलका नेत्रों में डालो कजरा ॥१॥
लाज करो तुम पर पुरुषों से, अपने पति का देखो मुखरा ॥२॥
सास सुसर की सेवा कीजो, अपने पति से न कीजो झगरा ॥३॥
कहे अनाथ बिन विद्या री बहनो, सहती हो तुम अति दुखरा ॥ पहनो पहनो री सुप० ॥४॥

९ भजन।

हत्यारे आठ कसाई, महाराज मनु बतलाते। (टेक) प्रथम सलाह दे पशु कटावें। हाड़ मांस के मज़ा बतावें। बन के नावते जीव मरावें, गूँगे पशु कटाते ॥ महा० ॥१॥ दूजा कसाई वह कहलावे। हाड़ मांस जा काट गिरावे। कतल पशु की खाल छुड़ावे,

सट २ छुरी चलाते ॥ महा० ॥२॥ तीजा कसाई काटन वाला। और बलिदान चढ़ावन वाला। पशु के प्राण निकारन वाला, कल्मा कर जिबह कराते ॥ महा० ॥३॥ चौथा मांस खरीदन वाला। सलहा करे पशु लो [illegible] की दलाली खाते [illegible]
हेतु पशु देनेवाला। बूढ़े चौपे बेचनवाला, कसाई के खूँटा बँधाते॥ महा० ॥५॥ छठवां मांस पकाने वाला। देग में लाश जलानेवाला। चौका मरघट करने वाला, घर भीतर लाश जलाते ॥ महा० ॥६॥ सप्तम् मांस परोसन वाला। परसादी कर बांटन वाला। मोल बाजार से लाने वाला, मांस से पौंद फुलाते ॥ महा० ॥७॥ अष्टम मांस निगलने वाला। चौपा चौपा खाने वाला। समीं मुर्दा भखने वाला, पेट को कबर बनाते ॥ महा० ॥८॥

१० कव्वाली।

अब ना करना इनसे प्यार जो तुम सुख बढ़ाना चाहो। टेक
रंडी होती बड़ी मक्कार धन हरलेती तुमसे यार ॥ नालिश डिगरी कर दे तैय्यार। जो तुम० ॥१॥
घर में छोरों तुम्हें बुलाय आतश टीका देत लगाय। तेल खटाई से करियो बचाय। जो तुम० ॥२॥

मिर्च खटाई से करो इन्कार मरहम पट्टी करो तयार। वैद्य को कुर्सी दीजो डार। जो तुम० ॥३॥

लिया पहाड़ी तोता पाल खायो खुश्क चने की दाल। हाथ में लेवो नीम की डाल। जो तुम० ॥४॥

जब होजावे कंठ में साल मुँह से लगी टपकने लार। जानो पड़ा आप का पाल। जो तुम० ॥५॥

सड़ कर होगये तुम बेहाल चलते अजब निराली चाल। रक्खो मक्खी का अब ख्याल। जो तुम० ॥६॥

जो थी सुन्दर घर की नार। अबतो करने लगी व्यभिचार। मनमें कुछ तो करो विचार। जो तुम० ॥७॥

अब भी मानो बात हमार। मत जावो डायन के द्वार। ज्यो-राम की यही पुकार। जो तुम० ॥८॥

१२—सिरपर काल रहा ललकार, कुछ सोच समझले प्राणी (टेक)

कहां राम और लक्ष्मण भ्राता, कहां गई वो जानकी माता। हरे सभी छोड़ कर हमसे नाता, गये स्वर्ग सिधार ॥१॥

कहां शङ्कर,कहां दयानन्दस्वामी,नहीं हकीकत हरिचन्द्रदानी, हरे एक २ कर चलेगये ज्ञानी, अब तो करो विचार ॥२॥

बाल अवस्था खेल गँवाई, विषयों में खोई तरुणाई हरे।

वृद्ध भया कुछ करा न आई, रोता फिरे गंवार ॥३॥
नेक कमाई कर कुछ प्यारे, जो तेरा परलोक सुधारे । हरे॥
धर्म जायगा साथ तुम्हारे, ऊधो कहत पुकार ॥४॥

११ दादरा ।

दयानन्द जी जगत को चिताय गयेरे (टेक)
कुरान और पुराणों के धुर्रे उड़ाये, वेदों के ज्ञान दर्शाय गयेरे ॥१॥
वाममार्ग जो फैल गया था, उसे सत्यानाशी ठहराय गयेरे ॥२॥
गांजे चरस की उड़ाते चिलम, उन्हें हवन की रीति सिखायगयेरे३
ऊधोराम कहांतक गुणगावें, ऋषियों के नाम लिखाय गयेरे ॥४॥

१२ दादरा ।

मन प्रभु से प्रीति न लाया रे । (टेक)
रात दिना विषयन में डोले, ईश्वर को नहीं ध्याया रे ॥१॥
बाली अवस्था खेल में कटगई, कठिन समय अब आया रे ॥२॥
बाप भाई मेरा मान न करते, जवानी में मतिभ्रम गंवाया रे ॥३॥
भोरी फिरत सौवर्ष की प्रतिज्ञा, उसे दसदिनही पीछे भुलाया रे४
खाने पहरने से हंसने से खोया, वाह अच्छा प्रेम निभाया रे ॥५॥
ऊधो उसके खेड़े बस्यो, जिनो विधवा विवाह चलाया रे ॥६॥

१३ कव्वाली।

नैया धर्म पड़ी मझधार, ईश्वर पार लगाने वाले (टेक)।
नहीं रहा अब कोई वीर, जो कोई हरे हमारी पीर।
आंखें लावें भर २ नीर, तुम्हीं हो कष्ट मिटाने वाले ॥१॥
हम हैं निर्बल विधवा बाल, सुख को भूल गईं सब ख्याल।
बाले पीतम करगये काल, मेरा मान रखाने वाले ॥२॥
श्रावण तीजों का त्योहार, हंस २ सखियां करें शृङ्गार।
माथे बेंदी गल में हार, मुख में पान रचाने वाले ॥३॥
प्रभू सुनो हमारी टेर, विपता पड़ गई हम पर ढेर।
ऊधो कर्मन का ये फेर, शङ्कर लाज बचाने वाले ॥४॥

१८-विरजानन्द के शिष्य ने ऋषि ऋण दिया उतार (टेक)

जब भारत युद्ध हुआ भारी, थी दुर्गति आय पधारी,
सोये थे पांव पसार ॥१॥
तब कृष्ण स्वर्ग पधारे, नहीं रहे थे अर्जुन प्यारे,
हुए मतवादि हजार ॥२॥
नहीं नित कर्म जाने थे, कालों ईश माने थे,
बढ़ी घर घर तकरार ॥३॥
मा बाप से नेहा तोड़ा, विद्वानों से नाता जोड़ा,

विद्या पेड़ो अपार ॥४॥
दयानन्द की पदवी पाई, वेदों में धूम मचाई,
वेद का किया प्रचार ॥५॥
जो मूर्तिक पूजक भाई, उनको दिया समझाई,
ईश का नहीं अवतार ॥६॥
जो लाखों विधवा रोती थीं, नाहक में जान खोती थीं,
किया उनका उद्धार ॥७॥
ब्रह्मचर्य की रीति चलाई, गुरुकुल दीने खुलवाई,
देख लो जा हरिद्वार ॥८॥
कहै ऊधोराम समझाई, दयानन्द ने कर दिखलाई,
तुम भी कुछ करो उपकार ॥९॥

२७-हा छोड़ गए भर्तार, उमर मेरि कैसे कटे आली ।
आम पके महुये गदराये, और सभी पौधे ले आये ।
विरहा लहर २ लहराये, रूठ चला माली ॥१॥
मुझको होगया सोच अपारा, अब दुनियां में नहीं गुजारा,
कौन रहा अब सौ सन हारा, भली जाय टाली ॥२॥
एक तो हम विद्या से हारे, दूजे फूटे भाग हमारे,

ऊधोराम ईश गुण गावें, मुझ दुखिया को क्या समझावें,
धन और धाम अब नाश मुहावें, लगी कर्म ताली ॥८।

१४ भजन ।

नैनन जलधार, देख बाल बिधवन को । टेक)
हाय कैसी चिट्ठी आई, चेचक में मरे जमाई,
हिये में लगी कटार ॥१।
मा, बाप भाई रोते हैं, आंसु से मुख धोते हैं,
बेटी क्या जाने सार ॥२॥
झट मां ने पुत्री बुलाई, ली गोद उसे बिठलाई,
फाड़ी चूरियों की लार ॥३॥
अनवट बिच्छुये नथ्ये बाली, सब रोते २ काली,
निकाला गल से हार ॥४॥
सिर पीट माय रोती है, पर कन्या खुश होती है
मांगे गुड़ियों की पिटार ॥५॥
सिर का शृङ्गार उतारा, और मैला वस्त्र डाला,
बनादी बिधवा नार ॥६॥
मुझे बालापन में ब्याहा, अब बिधवा कर बिठलायो,
नहीं देखा भर्तार ॥७॥

कहे ऊधोराम समुझाई, चलो वेदों के अनुयाई।
करो फिर से संस्कार ॥८॥

१९- हाय मोरी विपता कौन हरे (टेक)

स्वामी छोड़ परलोक सिधारे, धीरज हिया न धरे ॥१॥
कामदेव घेरो, मर्म भेद करे, नैनन नीर ढरे ॥२॥
सास निरदई ताने मारे, ननदी रार करे ॥३॥
निठुर ससुर धन वेददी, घर से बाहर करे ॥४॥
मात पिता भ्राता शोकिन, नित भावज जिया म जरे ॥५॥
सकु सहेली पास न बैठ, छांह न हम पै परे ॥६॥
कोटि यत्न कर सज्जन हारे, विपति न टारी टरे ॥७॥
ऊधोराम रह रह जिया आवे, विपद् ताप मरे ॥८॥

(राग- मिलन को सातोड़ी माता इस तर्ज पर)

२०- योगिन बनकर जाती री माता (टेक)

मेरे पति की मृत्यु भई है, अब नहिं नगरी सुहाती ॥१॥
अनदर विछुरे नाथ और बाली, मुझको कछु नहिं भाता ॥२॥
पण्डितों ने मेरा खून किया है, रात दिना बिलखाती ॥३॥
वैधव्य दुःख मे कहां भला था, जन्मतही विषपाती ॥४॥
ऊधोराम निरदई हुई से कछु नहीं पार बसाती ॥५॥

स्वामी गये परलोक परलोक गये महाराज ।
॥न मुझे शान्ति कहां, परलोक गये महाराज (टेक)
नी भर मुखड़ा देख न पाई, लुट गया मेरा राज ॥१॥
बाली उमर मेरी कैसी कटेगी, बिगड़ गये सब काज ॥२॥
गोदी मेरी खाली पड़ी है, कहते आवे लाज ॥३॥
युग २ जीवें श्रोत्रीशङ्कर, जिसने निकाला रिवाज ॥४॥
ऊधोराम अब क्यों रोती है, सुधर गये सब काज ॥५॥
—दुतियां चले सखी चालें में जान गई (टेक)
आज विवाह कल पत्नी मुई थी, हमारे लिए हीलेहवाले ॥१॥
आप गली २ कुत्ते भौकावें हम को कुंजी ताले ॥२॥
दमड़ीकी हड़िया को ठोकाके परखें, हमें भेड़ बकरीसी टालें३
माताभी दुरदुरकरे मुझको दिनभर, पुत्रीको हितचित सेपालें४
आपतो ब्याहता पै सौतन भी लावें हम को आले वाले ॥५॥
ऊधो जो बरजे है मुझको विवाह से देदेना विषके प्याले ॥६॥

१५ दादरा ।

दम देके दिलासा में राखो पिया (टेक)
वादा था हम तेरी ओर निभायेंगे, सोचो शर्मा ओवो पूरा किया १
भक्तोंहो पालनओ पोषणकरो अब, ओ रीपै जैसा था वादाकिया २

मैं पता दूवारा पाया ।उस मीतम० :

–मतलें नाम जाहिर का, बहिना कहना मेरा मान (टेक)
काहे के कारण आप गंवावे, मरने से क्या आलम पावे हरे
सब कोई तुझको समझावें, क्यों बनती अज्ञान ॥१॥
क्योंतुझको ऐसी हठलागी, क्यूँ हम सबकी ममता त्यागी हरे
तेरी उमर सहज कट जावगी, धर शङ्कर का ध्यान ॥२॥
काहे के कारण तू रोती, गाय भैंस विधवा नहीं होती । हरे
अपना जीवन यूँही तू खोती, नाहक तजे मान ॥३॥
भाज धोय सिर चली अटारी, नया दुपट्टा ओढ़ लियारी हरे
ननदुल ने मोट बोली मारी, भली करे भगवान ॥४॥
सुनकर हृदय लगी कटारी, मन कांपा जी बैठ गयारी । हरे
विधवा का जीना दुःखारी, हत दूँ अपनी जान ॥५॥
कृष्णो,कहै समझ सखी प्यारी, आत्महत्या पाप बड़ारी । हरे
अपना पुनर्विवाह करारी, वैदिक आज्ञा मान ॥६॥

२७-हृदय में गांसी मारे जगत मोहे (टेक)
बादल गर्जे बिंग लजें, नयन चुवें जल धारे ॥१॥
सधवा सखी शृङ्गार करत हैं, विधवा सर टे मारे ॥२॥
गावें मलार हिंडोला झूलें, विधवा खड़ी मन मारे ॥३॥